एक और अनेक

मौलिक सामाजिक उपन्यास

लेखक
श्रीनाथसिंह

प्रकाशक
'दीदी' कार्य्यालय
इलाहाबाद

[illegible] बार } सन् १९४६ मूल्य १॥)

एक और अनेक

पहला परिच्छेद

प्रभातकिरन का मन आज बहुत चञ्चल था। सिर्फ लड़की होने के कारण वह चौबीसों घन्टे घर में बन्द रहे, यह कहाँ का न्याय है? उसका दस वर्ष का छोटा भाई अकेले सारी बम्बई का चक्कर लगा आता है और वह अपने मकान के पिछवाड़े विक्टोरिया पार्क तक भी नहीं जा सकती। यह कैसी दयनीय स्थिति है!

उसने निश्चय किया कि आज वह घर से जरूर निकलेगी। सङ्गीत-सम्मेलन में वह जरूर जायगी। इस सङ्गीत-सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिये उसने कई दिन पहले पिता से आज्ञा मांगी थी, बहुत कुछ अनुनय विनय की थी। पर उसकी प्रार्थना उन्होंने नहीं सुनी।

पिता पर वह नाराज नहीं थी। वह जानती थी, वे वृद्ध पुरुष हैं, प्राचीन युग के धर्मभीरु प्राणी हैं। नये युग की आवश्यकताओं को समझने की उनमें शक्ति नहीं, उनके अनुसार अपने को ढालने की उनमें इच्छा नहीं।

उन्हें जब वह किसी प्रकार समझा नहीं सकी तब उसने सोचा कि वह उनसे छिपकर सङ्गीत-सम्मेलन में जायगी। संयोजकों से उसने कह रक्खा था कि वे कार्यक्रम में उसका नाम बारह बजे के बाद रक्खें। उस समय तक वह अवश्य पहुँच जायगी।

पर सबसे बड़ा प्रश्न यह था कि वह घर से निकले कैसे? बम्बई के जिस मकान में वह अपने पिता के साथ रहती है, वह

पूरा एक मुहल्ला ही है। कोई शराब के नशे में बड़बड़ा रहा है, कोई दर्द से कराह रहा है, कोई गा रहा है। सबसे छिपकर जाना है। फिर बारह बजने के साथ ही मुख्य द्वार बन्द हो जाता है।

उसके हिस्से में सिर्फ दो कमरे और एक रसोई घर था। एक कमरे में उसके होमियोपैथ पिता मय अपनी पुस्तकों और नन्हीं नन्हीं अगणित शीशियों की अलमारी के साथ रहते थे; वही उनका आफिस था, वही दफ्तर और वही शयनागार। दूसरा कमरा मालगोदाम था और उसमें उसकी माता और छोटा भाई सोते थे। रसोई घर में खाना पीना समाप्त हो चुकने पर एक चटाई बिछाकर वह पढ़ती लिखती थी। और उसी पर सो जाती थी।

मिट्टी के तेल की लालटेन के सहारे वह एक उपन्यास पढ़ने बैठी। पर उसका मन उसमें न लगा। वह पढ़ती कुछ और सोचती कुछ। कई सफे पढ़ चुकने पर वह फिर से पुस्तक शुरू करती।

कलम दवात लेने के बहाने वह पिता के कमरे में गई। घर से निकलने से पहले वह जान लेना चाहती थी कि वे अच्छी तरह सो गये हैं। शाम को वे अफीम का गोला चढ़ाकर सोते थे और नशे में रात भर पड़े रहते थे। फिर उनकी नींद सबेरे ही खुलती थी।

माँ के कमरे में वह आई तो देखा कि वहाँ भी सन्नाटा है। माँ बेचारी अन्धा थीं। प्रभातकिरन ने उससे पानी आदि के लिये पूछा। पर वह भी गहरी नींद में थी। छोटा भाई माँ के बगल में पड़ा था। उसके ऊपर चद्दर डालकर प्रभातकिरन दबे पावों रसोई घर में चली गई और सोचने लगी कि अब घर से बाहर कैसे जाय? मुख्य द्वार अभी खुला था। पर और घरों के लोग जग रहे थे। अतएव उसकी हिम्मत उधर से बाहर जाने की न हुई।

घर से छिपकर निकलने का विचार करते ही उसका हृदय धकधक करने लगा। जैसे वह किसी अत्यन्त साहस का कार्य्य

करने जा रही हो। उस अबला के लिये वह निश्चय ही साहस का कार्य था।

उसने रसोई घर की खिड़की खोली। सामने बम्बई का विक्टोरिया पार्क हरियाली की कुसुमित साड़ी पहने अलसाई अप्सरा की भाँति सुप्त पड़ा था। खिड़की के पास ही एक विशाल वृक्ष था जिसकी शाखें वह खिड़की से हाथ बढ़ाकर छू सकती थी। यह वृक्ष बहुत ही सघन था। पत्तियों के बोझ से इसकी बहुतेरी डालियां झुकती चली गई थीं। यहां तक कि बाग में खड़े होकर कोई भी उन्हें छू सकता था।

प्रभातकिरन ने तय किया कि वह खिड़की से मिली हुई शाख को पकड़ कर दुमन्जले से वृक्ष पर चली जायगी और फिर क्रमशः नीचे की ओर झुकती हुई शाखों के सहारे वह बाग में चली जायगी।

यह विचार आते ही उसका हृदय और भी धकधक करने लगा, मानो समुद्र की लहरें किनारे से टकरा रही हों। अपने हृदय की गति-ध्वनि को इतना स्पष्ट वह पहले कभी नहीं सुन सकी थी। उसके रोम रोम पुलकित हो रहे थे और हाथ पांव कांप रहे थे। कहीं ऐसा न हो कि हाथ छूट जाय, पाँव फिसल जायँ और वह जमीन पर जा गिरे। कुछ भी हो, आज वह घर से बाहर निकलेगी और जरूर निकलेगी। उसने खिड़की से बाहर सिर निकाला, वृक्ष की एक शाख को दोनों हाथों से मजबूती से पकड़ा और अपने शरीर का सारा भार उन पर डाल दिया। पांव उसके अभी खिड़की ही पर थे। क्रमशः वह डाल पर इस प्रकार चिपक गई जैसे छिपकली किसी दीवाल पर चिपक जाती है।

वहां से उसने अपने घर की खिड़की की ओर देखा, नीचे दूर-तक फैले हुये बाग की ओर देखा। चारों ओर सन्नाटा था। धीरे धीरे सावधानी से वह वृक्ष पर उस स्थान पर आई जहाँ से कई

शाखें फूटी थीं। फिर वह उस शाख पर गई जो पृथ्वी के अत्यधिक निकट थी?

वृक्ष के नीचे की ओर अन्धकार छाया था। बीच बीच में चांदनी पेड़ के पत्तों से छनकर आ रही थी। प्रकाश और छाया का वह मिश्रण बहुत ही सुहावना प्रतीत हो रहा था। मानो गोरी राधिका और श्यामवर्ण कृष्ण आपस में वहां मौन सम्भाषण कर रहे हों।

शाख के छोर तक पहुँचने पर पतली डालियों को पकड़ कर वह झूल पड़ी। नीचे बेंच पड़ी थी और उस पर एक युवक बैठा हुआ था। उसके दोनों कन्धों पर उसके एक एक पांव पड़े और वह सिहर उठी। उसके हाथों से शाख छूट गई और उसने अपने आपको उस युवक के कन्धों पर इस प्रकार अवलम्बित पाया जैसे छोटा बच्चा अपने पिता के कन्धों पर सवार होता है? और तुरन्त ही दोनों दूर जा गिरे।

पहले तो वह युवक घबड़ा गया। वह कुछ चौंका भी, उसे ऐसा लगा जैसे कोई चुड़ैल पेड़ से उसके कन्धों पर कूद पड़ी हो। पर थोड़ी बहुत जो चांदनी आ रही थी उसमें प्रभातकिरन के पांव उसे दिख गये, उसकी साड़ी का भी उसे आभास मिला। उसके कोमल अङ्गों का मृदुस्पर्श पाकर उसे निश्चय हो गया कि यह चुड़ैन नहीं कोई मानवी है जो सम्भवतः बन्धनमुक्त होने की इच्छा रखती है।

वृक्ष के नीचे उस सघन अन्धकार में दोनों एक दूसरे के आमने सामने खड़े थे। उस युवक ने जेब से दियासलाई और सिगरेट का केस निकाला। एक सिगरेट मुँह में दाब कर दियासलाई जलाई। उसके क्षीण प्रकाश में दोनों ने एक दूसरे को देखा।

प्रभात किरन के नवनीत से कोमल शरीर का सौंदर्य उसको महीन साड़ी के भीतर से फूटा पड़ता था। वह बगैर किनारे की

सफेद साड़ी पहने हुये थी और उस पर काले घने केशों की सुन्दरता के साथ गूँथी हुई दोनों चोटियां खूब फब रही थीं। वह उस निर्जन स्थान में स्वर्ग से उतरी हुई एक परी सी प्रतीत हुई।

"जान पड़ता है, आप किसी कालेज की छात्रा हैं।" युवक ने पूछा।

"जी! और आप?" प्रभातकिरन बोली।

"आपका भारवाहक?"

प्रभातकिरन ने सोचा, यह युवक कैसा धृष्ट है? उसने जान बूझ कर थोड़े ही उसके ऊपर पैर रक्खा था। और फिर इसे यहाँ अँधेरे में बैठने की क्या जरूरत थी? पर यह सब कुछ न कह कर उसने विनय से कहा—"क्षमा कीजियेगा, मैंने आपको बड़ा कष्ट दिया?"

"जी नहीं, इसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ। मेरा यह शरीर आपके किसी काम आ सके तो सेवा में सादर अर्पित है?"

"आपको धन्यवाद है?"

"परन्तु वास्तव में मुझे धन्यवाद देना चाहिये?"

"क्यों?"

"देखिये! शङ्कर ने कितना तप किया था, जब उनके सिर पर गङ्गा उतरी थीं। और आप यहाँ मेरे कन्धों पर अनाहूत आ खड़ी हुईं। यह आपकी बहुत बड़ी कृपा है।"

"मैं अपनी भूल स्वीकार करती हूँ। मुझे और लज्जित न करें।"

"और आप भी मुझे लज्जित न करें। मैं कहता हूँ, आपने कोई भूल नहीं की। पुरुष इसीलिये बना है कि वह स्त्री के काम आवे।"

युवक ने अपनी दियासलाई फिर जलाई। प्रभातकिरन ने लज्जा से मस्तक नत कर लिया। भय से वह थर थर काँप रही

थी। उसके मस्तक पर पसीने की बूँदें अङ्कित थीं। उसका हृदय धड़क रहा था।

युवक को उस पर दया आई। अधिक छेड़छाड़ उचित न समझ कर उसने कहा—"बहिन, डरो मत! मेरे रहते तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं हो सकता। कहो, तुम कहाँ जाना चाहती हो। मैं तुम्हारी सहायता करूँगा।"

"सच?" उसने विनय भरे स्वर में उत्तर दिया।

"हाँ।"

चौपाटी में जो सङ्गीत सम्मेलन हो रहा है। मुझे वहाँ तक जाना है।"

"चलो।'

इतनी रात बीते निर्जन स्थान में किसी अपरिचित पुरुष के साथ बढ़ने में उसके पाँव साथ न दे रहे थे। पर उसने अपना जी कड़ा किया। पार्क से बाहर निकलते ही इक्का दुक्का आदमी चलते नजर आये, कुछ बसें और ट्रामें भी गुजरीं। इससे कुछ उसकी हिम्मत बढ़ी।

थोड़ी दूर और चलने पर दोनों बिजली के एक खम्भे के पास खड़े होकर ट्राम की प्रतीक्षा करने लगे। उस समय दोनों को एक दूसरे का चेहरा स्पष्ट दिखाई पड रहा था। स्त्री में पुरुष के प्रति आदर और पुरुष में स्त्री के प्रति रक्षा का भाव उदय हो रहा था। उनके सिर के ऊपर बिजली का बल्ब चमक रहा था और और भी ऊपर आसमान में चन्द्रमा चमक रहा था।

उधर से गुजरने वाले लोग उनकी ओर सन्देह भरी दृष्टि से देखते हुये चले जा रहे थे।

प्रभातकिरन ने पूछा—"आप वहां पेड़ के तले क्या कर रहे थे?"

"सच सच बता दूँ?"

'हाँ।'

'अपनी प्रियतमा की प्रतीक्षा।'

'आपको फिर वही मजाक सूझा?'

'आप! आपने समझा कि मैं आपको प्रियतमा कह रहा हूँ। क्या आपके सिवाय बम्बई में कोई युवती ही नहीं है?'

'वह कौन है?'

'एक औरत है! किसी मिल में मजदूरी करती है?'

'उसके और कोई नहीं है?'

'उसके प्रेमी बहुत हैं?'

'उनमें एक आप भी हैं।'

'कहना चाहिये कि हूँ। दिल बहलाने के लिये मुझे भी तो कुछ साधन होना चाहिये।'

'आपने विवाह नहीं किया?'

'किया था। सुध नहीं कि कब? स्त्री थी, वह मर गई?'

'फिर दूसरी शादी कर सकते थे।'

'हाँ! इरादा तो है।'

'किससे करोगे?'

प्रभातकिरन ने देखा कि उसके हृदय की गति कुछ बढ़ गई है। जैसे वह कुछ कहना चाहता है और कह नहीं सकता है। सफेद बनियान के अन्दर उसका धड़ फूल और पचक रहा था। बनियान के नीचे वह एक खाकी हाफ पैंट पहने हुये था। इससे वह बहुत चुस्त लगता था। उसका शरीर स्वस्थ और सुडौल दीख रहा था, उसके मन में दृढ़ता थी और उसकी वाणी में रस था। पुरुष में जो गुण होने चाहियें, उसमें वे सब स्पष्ट हो रहे थे। प्रभातकिरन के मन में आया, वह उसके और निकट चली जाय, उसके और अपने हृदय की धड़कन को मिला कर एक कर दे और उससे कह दे—"आज से किसी और स्त्री की ओर निगाह मत उठाना। तुम्हारी प्रियतमा मैं हूँ।"

पर अपने पिता का स्वभाव वह जानती थी। अपने घर की स्थिति समझती थी। उसने अपने होठों को जोर से दाब लिया कि बात मुँह के बाहर न निकले।

वह युवक बोला—"देश में एक लड़की है। बातचीत पक्की हो चुकी है। छुट्टी पर जाऊँगा, तब शादी होगी और इस बीच में वह तो हई है और फिर तुम भी मिल......क्षमा कीजियेगा आप को मैं......।"

"किताबों में पढ़ा करती थी। आज स्पष्ट देखा कि पुरुष कितना छिछोरा होता है?"

"वह लीजिये, ट्राम आ गई।"

दोनों झटपट ट्राम पर चढ़ गये। दोनों को यह चिन्ता थी कि कोई परिचित न मिल जाय और कुछ कह न बैठे। प्रभातकिरन की तो कोई सखी सहेली न मिली। पर इत्तिफाक से उस युवक के सङ्गी साथी उस ट्राम में अनेक थे। नशे में चूर। न जाने क्या क्या बड़बड़ाते चले आ रहे थे। इन दोनों को ट्राम में चढ़ते देख कर उनमें से एक बोला—"अच्छा, सरजूप्रसाद! यह रङ्ग है? गुरू इसीलिये अकेले अकेले घूमते हो?"

युवक सरजूप्रसाद ने क्रोध-विस्फारित नेत्रों से उसकी ओर देखा। ये लफङ्गे न जाने कहाँ से आ धमके?

"ये सब आपके साथी हैं।" प्रभातकिरन ने तिरस्कार के साथ कहा।

सरजूप्रसाद कुछ न बोला। लज्जा से वह गड़ा जा रहा था। किसी युवती स्त्री को साथ लेकर चलने का उसके जीवन में यह पहला ही अवसर था। इस समय वह अधिक से अधिक शालीनता और शिष्टता का परिचय देना चाहता था।

"गुरू यह छोकरी कहाँ से लाये।" दूसरा बोला।

प्रभातकिरन क्रोध से उबल पड़ी। उसने सरजूप्रसाद की ओर

देख कर कहा—"आप मुझे अपमानित कराने पर ही तुले हुए हैं क्या?"

प्रभातकिरन की बात का कोई उत्तर न देकर सरजूप्रसाद अपने उस साथी की ओर बढ़ा और डांट कर बोला—"खबरदार जो ऐसी बेहूदी बात की? जबान खींच लूँगा। शैतान।"

वह व्यक्ति शराब के नशे में चूर था। उसने अपना मुँह बा दिया और कहने लगा—"लो खींच लो। मैं भी नहीं चाहता कि ऐसी जबान मुँह में रहे।" उसकी देखा देखी सभी सरजूप्रसाद की ओर बढ़े और लगे मुँह खोल-खोल कर कहने—"लो, सरजू भाई! मेरी भी जबान खींच लो। क्या जाने क्या मुँह से निकल जाय?"

"जो जी में आवे बको।" सरजूप्रसाद प्रभातकिरन के पास एक खाली सीट पर बैठ गया।

"ये सब तुम्हारे साथी हैं?" प्रभातकिरन ने पूछा।

"ये लुच्चे, बदमाश, लफङ्गे हैं?" सरजूप्रसाद ने जरा जोर से कहा।

"और तुम राज बाबू हो। वाह भाई वाह?" उनमें से एक बोला।

"जो कुर्सी पर बैठ कर काम करे उसका सब माफ और जो खड़े खड़े काम करे वह कुछ कहे भी न? वाह भाई वाह!" दूसरा बोला।

चौपाटी तक ट्राम नहीं जाती। उसका मार्ग भिन्न है। उस मार्ग पर पहुँचने पर सब ट्राम से उतर पड़े।

सरजू चाहता था कि ट्राम में बैठा ही रहे पर प्रभातकिरन का अनुरोध टालना असम्भव था।

वे सब साथ साथ पैदल चले। वे सब भी सङ्गीत सम्मेलन देखने जा रहे थे। मार्ग में एक ने कहा—"अब तो भले घरों की

बहू-बेटियों ने नाचने गाने का भी काम उठा लिया है। वाह रे जमाना।"

"और भले घरों के बेटे तबलची और सारङ्गीबरदार बन रहे हैं और मजा यह कि ये लोग स्वराज्य माँगते हैं।" दूसरा बोला।

"हुँह! कहीं नचनिये और गवैये देश को स्वाधीन कर सकते हैं?" तीसरे ने कहा।

"इन सब की अक्ल पर पत्थर पड़ा है।" प्रभातकिरन ने सरजूप्रसाद से कहा।

"बकने दो। ससुरों को?"

एकाएक मधुर सङ्गीत की ध्वनि गूँज उठी। प्रभातकिरन का हृदय तरङ्गित हो उठा। वह जल्दी जल्दी कदम उठाने लगी। सरजूप्रसाद भी उसके साथ बढ़ा। वे सब भी उसके साथ बढ़े।

बिजली की अगणित बत्तियाँ जल रही थीं। ऊपर पूर्णमासी का चन्द्रमा अनन्त नभ से मुस्करा रहा था। नीचे समुद्र हिलोरें ले रहा था। वह अद्भुत दृश्य था। वहाँ पहुँच कर प्रभातकिरन सब कुछ भूल गई।

मुख्य द्वार पर स्वयं सेविकाओं ने उसे देख कर ताली बजाई। 'प्रभातकिरन आ गई! अब हमारा स्कूल जीतेगा।' वे चिल्ला उठीं। जनता ने भी इस नवीन सङ्गीत-विशारदा का स्वागत किया।

प्रभातकिरन अन्दर जाने लगी। सरजू भी उसके साथ आगे बढ़ा। उसके पीछे उसके वे सब साथी भी आगे बढ़े।

स्वयंसेविकाओं ने सरजू को और उन सब को रोका—'पास?' वे बोलीं।

'इन्हें आने दो। ये मेरे साथ हैं।' प्रभातकिरन ने सरजूप्रसाद की ओर देखा।

स्वयंसेविकाओं ने सरजूप्रसाद को भी रास्ता दिया और वह प्रभातकिरन के पीछे बेतहाशा भागा।

उसके वे साथी भी आगे बढ़ने लगे। पर स्वयंसेविकाओं ने उन्हें रोक दिया।

वे सब उनके हाथ जोड़ने लगे, पैरों पर सिर रखने लगे—'हमें आने दो, हम भी उनके साथ हैं।' और लगे जोर जोर से चिल्लाने—'सरजू भैया! हमें बाहर ही छोड़ दोगे! यह दगा! आये साथ साथ और अन्दर गये अकेले।'

'आज शुरू से सब बिगड़ता आ रहा है।' प्रभातकिरन ने एक दीर्घ निश्वास लिया और उन सब की ओर पराजित तीतर की भाँति देखा।

यह सङ्गीत सम्मेलन बम्बई के न्यू महिला सङ्गीत विद्यालय की ओर से बुलाया गया था, जिसकी कि प्रभातकिरन एक छात्रा थी। जैसा उसका रूप था वैसा ही उसका स्वर था। अतएव संस्था की अध्यक्षा को वह बहुत प्यारी थी। उन्हें यह मालूम था कि प्रभातकिरन गरीब है और गरीबों के मुहल्ले में रहती है। उन्होंने अनुमान किया कि सम्भव है वे सब व्यक्ति उसके पहचान के हों, पर सङ्कोचवश वह उनको अन्दर न ला रही हो। इसलिये उन्होंने उन सब को अन्दर जाने की इजाजत दे दी।

तुरन्त ही वे सब भी मञ्च पर जा बैठे और सरजूप्रसाद की खुशामद करने लगे—'सरजू भैया! हमें क्या मालूम था कि यह बड़े घर की बेटी है? तुम भी बड़े आदमी हो न! हाँ, हमारी मील में बाबू हो और हम लाख खर्च करें, लाख पहनें पर हैं तो मजदूर के मजदूर ही!'

'खामोश बैठो।' प्रभातकिरन ने उन्हें डाँटा।

'बहुत अच्छा रानी! बहुत अच्छा बिटिया!' वे सब उसको हाथ जोड़ने लगे।

प्रभातकिरन ने दूसरी ओर मुँह फेर लिया। आगे का प्रोग्राम शुरू हुआ।

इस सङ्गीत सम्मेलन में बम्बई के समस्त महिला-गानविद्यालयों की छात्राएँ भाग ले रही थीं। विद्यालयों में प्रतियोगिता हो रही थी। न्यू महिला सङ्गीत विद्यालय अभी तक बहुत पिछड़ा था। अब उसकी सारी आशायें प्रभातकिरन पर थीं।

प्रभातकिरन गाने के लिये खड़ी हुई। तालियों से उसके विद्यालय की छात्राओं ने उसका महत्व प्रकट किया।

उसने गाना शुरू किया। उसके स्वर चन्द्रमा को छूते और फिर वहाँ से समुद्र की लहरों पर उतर कर किनारों से टकराते प्रतीत हुए। उसने ऐसी करुण रागिनी गाई कि श्रोताओं के हृदय उमड़ आये। गाते गाते उन्मत्त सी होकर उसने अपनी बाहें फैला दीं। जैसे माता अपने नन्हें शिशु को गोद में लेने को बुला रही हो, जैसे भक्त भगवान का आह्वान कर रहा हो, जैसे कोई प्रेमी अपनी प्रियतमा को अपनी भुजाओं में आबद्ध कर रहा हो।

चारों तरफ से 'वाह ! वाह !' की ध्वनि गूँज उठी। धनीमानी व्यक्तियों ने उस पर स्वर्ण पदकों की वर्षा कर दी। सेठ रङ्गीलाल अपने सभापति के आसन से उठे और उसके मस्तक पर उन्होंने विजय मुकुट रख दिया।

यह विजय मुकुट चाँदी और मोतियों का बना हुआ था और विजयी विद्यालय की सर्वश्रेष्ठ सङ्गीतज्ञ बालिका को पहनाया जाने को था।

यह जीवन में पहला अवसर था जब प्रभातकिरन को इतना सम्मान मिला था। वह उन्मादिनी सी आँखें फाड़ फाड़-कर चारों ओर देख रही थी कि कहीं यह सब सपना तो नहीं है।

एकाएक बिजली की बत्तियाँ बुझ गईं, चाँद फीका पड़ गया और पूर्व की दिशा कञ्चनमयी हो उठी। सवेरा हो गया था।

सुख की रात कितनी जल्दी बीत गई। हाय ! अब क्या हो ? पिता जाग गये होंगे, माता उसका नाम ले लेकर पुकार रही होगी।

भाई 'भूख-भूख' चिल्ला रहा होगा। उसके पङ्ख होते तो फुर्र से उड़ कर पहुँच जाती। पर अब क्या करे ? गगन विहारिणी मेघमाला से टूट कर गिरे हुये ओले के समान वह गली जा रही थी। रात भर कहाँ रही ? इसका पिता को क्या जवाब देगी। हाय ! गजब हो गया ! उसका चेहरा सफेद पड़ गया। मुख से एक चीख निकल गई और जहाँ खड़ी थी वहीं धड़ाम से गिर पड़ी।
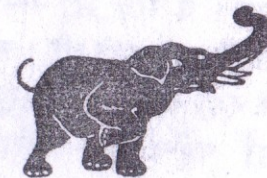
दूसरा परिच्छेद

दो तीन स्वयंसेविकाएँ तुरन्त प्रभात किरन के पास पहुँची और उसे पंखा झलने लगीं। कुछ पानी लेने दौड़ीं। सरयूप्रसाद दौड़ कर उसके सिरहाने बैठ गया। उस समय वही उसका आत्मीय था। यही समझकर उपस्थित जनता उस पर सहानुभूति की वृष्टि करने लगी।

सेठ रंगीलाल ने तुरन्त अपने ड्राइवर को बुला कर आदेश दिया—"इस बालिका को तुरन्त मेरे निजी अस्पताल में ले जाओ।" फिर वे सरयूप्रसाद की ओर मुख करके बोले—"आप इनके कौन हैं ? भाई ?"

"जी, सेठ जी।" सरयूप्रसाद उठ कर खड़ा हो गया।

"आप भी चले जाइए ?"

"बहुत अच्छा।"

स्वयंसेविकाओं ने प्रभातकिरन को उठा कर सेठ रंगीलाल की मोटर कार में लिटा दिया। आगे की सीट पर ड्राइवर के बगल में सरयूप्रसाद बैठ गया। उसके वे साथी भी दौड़े।

"सरयू भैया ! हम लोग भी चलें ?"

"नहीं, जगह नहीं है ?"

"हम दौड़ते चलेंगे ?" एक बोला।

"अगर मोटर का इञ्जन रास्ते में फेल हो गया तो हम लोग उसे ढकेलेंगे ?" दूसरे ने कहा।

ड्राइवर उनकी ओर देख कर हँसा और उसने मोटर स्टार्ट कर दी।

बात करते-करते मोटर उनकी नजरों से ओझल हो गई। कुछ

दूर तक वे सब दौड़े, पर प्रयास व्यर्थ समझ कर रुक गये। एक जो सबसे आगे था, घूम कर बोला—"लो, तुम सब पिछड़ गए!"

"और तुम ?"

"मेरा दूसरा नम्बर रहा।"

इस पर सब हँस पड़े। वे क्रमशः ट्राम के मार्ग पर आये और उसकी प्रतीक्षा में खड़े होकर बातें करने लगे।

एक ने कहा—"मैं इस छोकरी को पहचानता हूँ ?"

"मैं भी पहचानता हूँ।" दूसरा बोला—"यह डाक्टर रामभरोस की लड़की है। मैं कई बार उनके यहाँ दवा लेने गया हूँ। एक बार तो बीमार-बीमार कुछ नहीं था, फकत इसी लड़की को देखने के लिये दवा लेने के बहाने से गया और दुअन्नी गँवा बैठा।"

तीसरा बोला—सरयू लड़की को लेकर अस्पताल गये हैं तो हम लोग चल कर उसके बाप को खबर करें। यह भी पुण्य का कार्य्य है।

"जरूर ! जरूर !" चौथा बोला।

ट्राम की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ी। सबके सब उसका रास्ता रोक कर खड़े हो गये। तत्काल ही वे उस पर सवार हो प्रातःकालीन समीरण का आनन्द लेते चले जा रहे थे। उनके कपड़ों से मैल पसीने और शराब की बू उठ रही थी। रात भर जगने के कारण सब अर्द्धनिद्रित से थे और जम्हाई ले रहे थे।

एक एक करके ऊँची अट्टालिकाएँ क्रमशः पीछे छूट गईं और वही मुहल्ला आया जो विक्टोरिया पार्क से मिला हुआ था। वहाँ सब उतर पड़े और उनमें नेतृत्व की होड़ शुरू हुई। जो डाक्टर का मकान जानते थे वे सब से आगे रहना चाहते थे कि वे ही पिता को पुत्री के हर्ष और शोक का समाचार सुनावें।

डाक्टर रामभरोस अपने आफिस में उदास बैठे थे। उनकी

कुर्सी के नीचे फर्श पर उनकी अंधी पत्नी बैठी थी! उनके सामने मेज पर उनका दस वर्ष का पुत्र बैठा था। अंधी पत्नी कह रही थी—"मैंने तुमसे कितना कहा कि लड़की का ब्याह कर दो, सयानी है। पर तुम न माने, अपना खाना पकवाने के लिये उसे रोके रहे!"

"तुम्हारा खयाल है कि वह किसी के साथ घर से निकल गई?"

"और क्या हुई?"

"हूँ! मैं कहता था कि उसे घर से मत निकलने दो। पर तुम मानीं? तुम्हीं ने कहा, उसको संगीत सीखने दो। किसी पाठशाला में अध्यापिका हो जायगी। कमा खा लेगी, याद है?"

"मैं क्या जानती थी कि उसके पंख लग जायँगे तो उड़ जायगी? पर तुमने शादी क्यों नहीं की? लाख मैंने कहा था कि उसे स्कूल भेजो, मेरी बात न मानते?"

"मानता न तो रहता कहाँ?"

"मैं यह भी तो हमेशा कहती थी कि लड़की का ब्याह करो? ब्याह करो? वह बात क्यों नहीं मानी?"

"जो हुआ सो हुआ? खैर, यह बताओ कि कौन उसे बहका कर ले जा सकता है?"

"लड़की को अधिक उम्र तक 'सयानी' रखना और कुतिया पालना बराबर है। समझे! सैकड़ों तो आते जाते थे। तुम्हारे तो आँखें थीं। उन्हें देखते रहे होंगे? सोचो, पहचानो?"

लड़का बोला—"अम्मां, भीतर जाओ, मरीज आ रहे हैं।"

सामने के तंग द्वार में तीन व्यक्ति एकाएक आकर ससक गए? करीब इतने ही व्यक्ति उन्हें पीछे से ठेल रहे थे। वे चिल्ला रहे थे—"डाक्टर साहब! डाक्टर साहब!"

"अरे बाबा! एक-एक करके आओ! एक एक करके बोलो? ऐसी जल्दी क्या पड़ी है।"

एक बोला—"डाक्टर साहब।" दूसरे ने उसके मुँह पर हाथ रखा—"ठहर, पहले मैं कहूँगा।" तीसरे ने उसके मुँह पर हाथ रखा—"डाक्टर साहब। आपकी लड़की……।"

डाक्टर रामभरोस आगबबूला हो गये। उन्हें ढकेलते हुये वे द्वार के बाहर ले गए और दरवाजा बन्द कर दिया। गुस्से से वे थरथर काँप रहे थे।

स्त्री ने उनके पास आकर कहा—"सुन तो लो, क्या कहते हैं?"

"ऐसे आवारे लोग जिस लड़की का जिक्र करें उसको सदा के लिये भूल जाना अच्छा है?"

डाक्टर रामभरोस कमरे में टहलने लगे और डगमगाने लगे।

"हाय नाक कट गई! अब जिन्दगी में क्या रहा?" वे बोले।

माँ ने खिड़की के बाहर से सिर निकाला। स्नेह से घूँघट के भीतर से पूछा—"हाँ, भाई हमारी लड़की का क्या हुआ?"

"बेहोश हो गई है। अस्पताल में भेजी गई है?"

"तुम क्या जानो?"

हम लोग उसके साथ थे; रात भर?"

"हाय गजब हो गया। इन लफंगों का और मेरी लड़की का साथ?" डाक्टर ने पत्नी को पीछे की ओर घसीटा और स्वयं खिड़की के बाहर सिर निकाल कर कहा—"मेरी लड़की घर में सो रही है। जिसका तुम लोग जिक्र करते हो वह कोई और होगी, जाओ यहाँ से?"

आस पास के किरायेदार, मर्द और लड़के वहाँ जमा होने लगे। "क्या हुआ बाबू, क्या हुआ भैय्या? कलजुग है कलजुग!!

आजकल की लड़कियाँ जो न करें सो थोड़ा। लड़की का क्या कसूर ? उसकी शादी क्यों न की ? शादी क्यों करें ? पाल-पोस कर खुद बड़ी किया, कमाई किसी और को ?' आदि आवाजें आने लगीं।

मानरक्षा का सवाल था। डाक्टर ने किवाड़ खोला—"भाई चाहते हो, यहाँ से चला जाऊँ तो वैसा कह दो। तुम सब लोग मिलकर मेरी बेइज्जती क्यों करते हो। मेरी लड़की बीमार है। बेचारी घर में पड़ी कई रोज से कराह रही है ?"

"दिखाओ हमें," एक बोला !

"तुम्हारी कोई लगती है ?" डाक्टर ने कहा—"जो तुम्हें लड़की दिखाऊँ। जाते हो या पुलिस बुलाऊँ ?"

डाक्टर ने फिर दरवाजा बन्द कर लिया।

"ऐह ! चलो यार ! जब दूसरे फिकर करने वाले हैं तब खुद क्यों करें ?" एक बोला और वे सब जाने लगे।

डाक्टर ने फिर किवाड़ खोले। यह बहुत बड़ा आक्षेप उन पर किया गया था। पर केवल होंठ फड़फड़ा कर वे रह गये। उनमें से एक जो बहुत चतुर था और कई बार दवा ले चुका था। बोला—"डाक्टर साहब ! कल शाम को जो दवा ले गये थे, उसने बहुत फायदा किया। एक खोराक वही फिर दीजिये।"

"अन्दर आओ।" डाक्टर ने कहा।

वह अन्दर चला गया और डाक्टर ने किवाड़ बन्द कर लिये।

डाक्टर उसे वहाँ से दूर मालगोदाम वाले कमरे में ले गये। एक बैंच पर बैठाल कर पूछा—"तुम मेरी लड़की को पहचानते हो ?"

"हाँ"

"कैसे ?"

"यहाँ कई बार दवा लेने आया हूँ। तभी दो-एक बार देखा था ?"

"कल कहाँ देखा ?"

"सङ्गीत सम्मेलन में।"

'हाँ ठीक, वहाँ गई होगी। सङ्गीत विद्यालय में वह पढ़ती है। वहाँ जाने में कोई बुराई नहीं।' डाक्टर ने अपनी पत्नी को आवाज लगाई।

"सङ्गीत सम्मेलन में गई है, तुम्हारी लाड़िली ! इतना मना किया आखिर न मानी। अब मैं उसे घर में नहीं आने दूँगा।"

"कब गई ? किसके साथ गई ! क्या कहते हो ?"

"सरयूप्रसाद के साथ गई। रास्ते में हम सब भी मिल गये थे ?"

"यह सरयूप्रसाद कौन है ?"

"हमारे मिल में बाबू हैं ?' वह आगन्तुक बोला।

"आश्चर्य है कि तुम उसे जानते हो और हम नहीं जानते।" डाक्टर रामभरोस दाँत पीसने लगे।

सहसा उन्हें जान पड़ा कि कोई रसोई घर के पीछे से आवाज लगा रहा है। उन्होंने उधर कान लगाया—'अरे घर में कोई है ?'

डाक्टर रामभरोस ने लड़के से कहा—'देख कौन है ?'

लड़का दौड़ कर रसोइघर में गया। खिड़की खोल कर बाग की ओर देखा। खिड़की से मिली पेड़ की शाख पर एक आदमी खड़ा था और कह रहा था—'बेटा, तुम्हारे पिता जी घर में हों तो जरा इधर भेज दो।' इसके पहले कि लड़का लौट कर आवे, डाक्टर रामभरोस खुद ही उधर बढ़ गये।

पेड़ की डाल पर चढ़ा सरयूप्रसाद कमरे के अन्दर झाँक रहा था।

"तुम कौन हो जी! तुम्हारा क्या इरादा है?" डाक्टर साहब ने उसे डाट कर कहा।

आपकी पुत्री ने यह पत्र दिया है। सरयूप्रसाद ने पत्र खिड़की के अन्दर फेंक दिया; इतने में वह व्यक्ति भी जो मालगोदाम वाले कमरे में खड़ा था, इधर आ गया और बोला—"अच्छा सरयू! ये रंग हैं। चोर दरवाजे से आया जाया करते हो?'

तुरन्त ही वह बाहर निकला और वहाँ जमा हुये सब लोगों से कहा—'कल रात डाक्टर साहब की लड़की जिसके साथ थी वह चोर दरवाजे से अन्दर आ रहा है। चलो देख लो।'

भरभरा कर सब लोग अन्दर घुस आये। सरयू पेड़ पर से अभी कमरे के अन्दर झांक ही रहा था।

एक आदमी चिल्लाया—"पकड़ो बदमाश को, पुलिस के हवाले करो।"

इस वाक्य से सरयूप्रसाद के स्वाभिमान को ठेस लगी। वह खिड़की में से कमरे में निकल आया। बोला—"लो, मैं खड़ा हूँ। जिसमें साहस हो पकड़ो।"

फिर उसने कहना आरम्भ किया—"मैंने कोई अपराध नहीं किया। किसी असहाय बहन की सहायता करना कोई अपराध नहीं है?"

"बड़े साहू हो तो पिछवाड़े से क्यों आते जाते हो।" एक आदमी बोला।

"जब कोई भारी सङ्कट उपस्थित होता है, एक-एक मिनट का मूल्य होता है तब आदमी सब नियम कायदे भूल जाता है।"

"हूँ!" डाक्टर साहब ने उसकी ओर घूर कर देखा। फिर उन्होंने फर्श पर से वह चिट्ठी उठा ली। प्रभातकिरन ने लिखा था—"पिता जी, मैं यहाँ अस्पताल में पड़ी हूँ। आप चिन्ता न करें।

"आपकी पुत्री, प्रभातकिरन।"

डाक्टर रामभरोस ने पत्र को फाड़कर सरयूप्रसाद के मुँह पर

फेंक दिया। कहा—'उससे कह देना, मेरे घर में अब उसके लिये स्थान नहीं है, जाओ।"

"आप पिता होकर इस प्रकार की बात कह रहे हैं। बिना अपराध सुनाये उस बेचारी को यह सजा दे रहे हैं।"

"उसने मेरी आज्ञा का पालन नहीं किया; यह सबसे बड़ा अपराध है'?'

"छोटा अपराध क्या होता?"

"कम से कम अपनी माँ को बता कर जाती?"

क्यों? माँ जी! उसने आपसे जिक्र नहीं किया था?"

माता अपनी पुत्री के लिये व्याकुल हो रही थी। बोली—"मुझ से बता कर गई है। सङ्गीत सम्मेलन में सैकड़ों लड़कियाँ गई हैं। कोई अपने घर से नहीं निकाली गई, वही क्यों निकाली जाय?"

डाक्टर साहब वहीं जमीन पर सिर पकड़ कर बैठ गये। सरयूप्रसाद ने देखा कि उनके लिये शांत वातावरण की आवश्यकता है। उसने आगन्तुक सज्जनों को सम्बोधित करके कहा—"भाई! तुम लोग क्या भीड़ लगाये हो? ऐसी कोई अनहोनी बात नहीं हो गई। सभी स्कूलों की लड़कियाँ गई थीं, वह भी गई। उसे सबसे ज्यादा आदर मान मिला। बेचारी को गश आ गया। इससे अस्पताल में है। शाम तक आ जायगी। क्यों दुबरी! है न यही बात? क्यों घसीटे? भूरी?"

वे सब एक साथ बोले—"हाँ सरयू भैया! लड़की क्या है, साक्षात लक्ष्मी है। भगवान ऐसी कन्या सबको दे।"

"हटाओ सबको बाहर! न कुछ बात के लिये मुहल्ला सिर पर उठा लिया है।"

मिल के मजदूर सरयूप्रसाद के बहुत मुँह लगे थे, पर उसे मानते भी बहुत थे। उसकी आज्ञा का वे उलङ्घन करना तो जानते ही न थे।

तीनों भीड़ को बाहर निकाल ले गये। डाक्टर रामभरोस अपने बैठने के कमरे में आये। सरयूप्रसाद भी उनके पीछे आया।

वे तीनों मजदूर और उनके साथी कमरे के बाहर स्वयं सेवक की तरह खड़े हो गये। उनका यह रूप देखकर आस पास के घरों वाले क्रमशः वापस चले गये। पड़ासियों की स्त्रियों और युवती कन्याओं के विषय में रसमयी चर्चा करने में उन्हें बड़ा आनन्द आता था। सौभाग्य से आज ऐसा प्रिय अवसर उपस्थित हुआ था पर इस सरयूप्रसाद ने आकर उसमें विघ्न डाल दिया।

अब कमरे में कोई न रह गया था। डाक्टर रामभरोस जब सोचते थे कि पुत्री ने उनकी आज्ञा नहीं मानी, तब मन ही मन उस पर दाँत पीसते थे और प्रतिज्ञा करते थे कि कुछ भी हो, अब मैं उसे घर में न आने दूँगा। परन्तु दूसरे ही क्षण जब अपनी कच्ची गहस्थी का ख्याल करते थे—लड़का छोटा ही था, पत्नी अन्धी थी, नौकर रख नहीं सकते थे, पुत्री ही घर का सारा काम करती थी—तब सोचते थे, खैर देखा जायगा, बहुत अनुनय विनय करेगी तो इस बार माफ कर दूँगा। परन्तु नाक रगड़वा लूँगा।

पत्नी ने सरयूप्रसाद से पूछा—'बेटा तुम पिछवाड़े की तरफ से क्यों आये ? इतने लोगों ने तुम्हें उधर से आते देखा, ये अपने मन में क्या कहेंगे ?'

"सच यह है माता जी कि सामने का रास्ता मुझे मालूम न था ?"

"और पिछवाड़े का रास्ता मालूम था, जरा सुनो इसकी बातें ? डाक्टर रामभरोस ने कहा।

प्रभातकिरन ने मकान का यही पता बताया था कि विक्टोरिया पार्क से मिला हुआ मकान है। खिड़की से मिला हुआ ऊँचा पेड़ है। मैं परदेशी आदमी हूँ। और किस सहारे आपको खोजता ?

"तुम यहाँ पहले कभी नहीं आये ?"

"नहीं।"

"मेरी पुत्री को तुम कब से जानते हो ?"

"कल पहचान हुई, उसके पहले कभी नहीं देखा था ?"

"उड़ो मत, मैंने भी जवानी में बहुत खेल खेले हैं।"

"क्या कहा ? तुम्हें शर्म नहीं आती" पत्नी ने कहा।

डाक्टर बोले—"चुप रहो। लड़की के भाग्य से तुम अन्धी हो गई हो और अब मुझे भी अन्धा बनाना चाहती हो ?"

सरयूप्रसाद ने कहा—"मुझे तो ऐसा लगता है डाक्टर साहब कि माता जी बगैर आँखों के देख रही हैं और आप आँख रहते भी ....।"

"अन्धे हैं ! कहो ! कहो ! रुक क्यों गये ?"

"क्षमा करें ! आपको कष्ट पहुँचाना मेरा ध्येय नहीं। सेठ रङ्गीलाल ने मोटर भेजी है। पुत्री को देखना चाहें तो चल कर देख लें।"

"मोटर भेजी है, सेठ रङ्गीलाल ने। बहुत ही उदार हैं वे ! उनका तभी तो इतना नाम है। अरी सुनती हो, मैं प्रभात को देखने जा रहा हूँ।"

डाक्टर रामभरोस तैयार होने लगे। उनका गुस्सा बहुत कुछ कम हो गया। जिस लड़की का नगर के धनी मानी व्यक्ति इतना ख्याल रखें वह मामूली लड़की नहीं। वे उसे माफ कर देंगे। अपने घर में ले आयेंगे।

"मैं भी चलूँगी।" पत्नी ने कहा।

"और मैं भी चलूँगा।" पुत्र बोला—"मैं कभी मोटर पर नहीं चढ़ा।"

"चलो ! सब चलो।" डाक्टर रामभरोस ने कहा—"जरा अच्छी वाली साड़ी पहनो ! और बेटा तुम, अपने बढ़िया वाले कपड़े पहन लो। हाँ !"

"सेठ रङ्गीलाल से जान पहचान होना बड़ी बात है। वे मुझे

अपना फेमिली डाक्टर बना लें, तो मेरी जनम-जनम की गरीबी दूर हो जाय।" वे विजय में पूर्ण विश्वास रखने वाले सेनापति की भाँति कमरे में टहलने लगे। सहसा बोल उठे—"मोटर कहाँ है भय्या।"

"पार्क में!"

"किधर से चलना होगा।"

"इसी खिड़की की तरफ से पेड़ पर से उतर चलिये! आपको कष्ट तो होगा ही?"

"कोइ चोरी का काम है क्या, जो पिछवाड़े से कूदें? मोटर सामने मँगवाओ। डंके की चोट पर चलेंगे। मुहल्ले वाले भी तो देखें। टुकड़हे दो चार आना देकर मुझको गुलाम समझते हैं। इनसे बात न करूँगा।"

सरयूप्रसाद ने खिड़की के बाहर सिर निकाल कर ताली बजायी मोटर बाग में पास ही खड़ी थी। ड्राइवर का ध्यान इधर आकृष्ट हुआ। सरयूप्रसाद ने उसे घूम कर सामने की ओर आने को कहा।

"लड़के को भेज दो, रास्ता बता देगा।" श्रीमती रामभरोस ने कहा।

माँ की बात पूरी भी न हुई थी कि लड़का गिलहरी की तरह खिड़की से वृक्ष पर और वृक्ष से जमीन पर जा पहुँचा। डाक्टर ने आगे बढ़ कर देखा। पुत्र का इस प्रकार वृक्ष से उतरना उन्हें बहुत अच्छा लगा। बोले—"जैसे बन्दर हो। इसी रास्ते से प्रभातकिरन भी रात में गई होगी? मैं इस वृक्ष की डालियाँ कटवा डालूँगा।"

गरीबों के उस विशाल समाधि-भवन के बाहर द्वार पर मोटर का हार्न बज उठा। डाक्टर अपनी अन्धी पत्नी को लेकर बाहर निकले। मकान में ताला लगाया और नीचे उतरने लगे। पड़ोसी उन्हें देखने के लिये जमा हुये। उनके बीच से वे छाती ताने,

मस्तक ऊँचा किये चले जा रहे थे। यह उनके जीवन में बहुत बड़ा अवसर था। शोक का नहीं, सन्ताप का नहीं, गर्व का।

रस्ते में उन्हें फिर ख्याल आया कि लड़कियों को इतनी आजादी देना ठीक नहीं। अब तक जो हुआ सो हुआ। अब वे प्रभातकिरन को घर से न निकलने देंगे। स्कूल से उसका नाम कटवा देंगे। सयानी लड़की है। जल्दी से जल्दी उसका विवाह करके ससुराल भेज देंगे। मोटर में अचल हिमालय सा मस्तक ऊँचा किये वे शांत भाव से बैठे थे। पर उनकी यह विचार धारा उनके अन्तर में बन्द न रह सकी। पहले वह मौन संकेत और फिर स्पष्ट सम्भाषण के रूप में प्रकट हुई। अन्धी पत्नी मौन संकेत समझती भी कैसे?

उसने पति के कान में फुस-फुस किया—"लड़का तो यह भी अच्छा जान पड़ता है?"

"कौन?"

"यही जो मोटर में हमारे तुम्हारे साथ बैठा है?"

"हुश! क्या है इसके पास? तुम चाहती हो जैसे हम गरीब रहे वैसे ही हमारी लड़की भी जन्म भर गरीबी की भट्टी में सुलगती रहे?"

"अमीर कहां मिलेगा?"

"सेठ जी से जिक्र करूँगा। वे कोई उपाय बतायेंगे। राम चाहेगा तो अब कोई अरमान बाकी न रह जायगा?"

एकाएक मोटर रुक गई। साथ ही डाक्टर रामभरोस की विचार धारा की भङ्ग हो गई। सेठ रङ्गीलाल का निजी अस्पताल आ गया था, विशाल भवन, स्वच्छ सुसज्जित कमरे, नर्सें, कम्पाउण्डर, डाक्टर, दवाइयों की गन्ध, नियम कायदे।

ये लोग आगन्तुकों के कमरे में ले जाये गये और एक मेज के पास पड़ी कुर्सियों पर बैठ गये।

"मेरी पुत्री कहाँ है ?" अन्धी माता ने पूछा।

"हमें वहाँ ले चलो।" डाक्टर ने कहा।

"ठहरो! अभी वहाँ कोई नहीं जा सकता। इस समय सेठ रङ्गीलाल मरीज से बातें कर रहे हैं। वे चले जायँ तब जाना?"

"यह नहीं हो सकता कि कोई गैर पुरुष मेरी पुत्री से एकान्त में बात करे और मैं न बोलूं।"

वे उठ कर खड़े हो गए और लगे जोर-जोर से चिल्लाने—"मुझे मेरी पुत्री के पास ले चलो।"

उनकी आवाज सेठ रङ्गीलाल के कान में पड़ी और उन्होने तुरन्त ही उन्हें बुलवाया।

उनकी उग्र उत्तेजित मुखाकृति देख कर प्रभातकिरन सहम गई मारे भय के उसने चद्दर से मुँह ढक लिया।

पुत्री का नाम लेकर उन्होंने कई बार पुकारा, पर वह न बोली। इससे उसके मन में बड़ी ग्लानि हुई। उन्होंने मन में सोचा, अभी यह लड़की सेठ रङ्गीलाल से हँस-हँस कर बातें कर रही थी और मुझे देखते ही इसने चद्दर से मुँह ढक लिया। पिता को देख कर इसे प्रसन्नता प्रकट करनी चाहिये थी, उल्टा यह मुँह छिपाती है। पिता को काल समझती है। अच्छी बात है, वह लौट जायेंगे। उनके मन में जो सद्भावना के भाव उदित हुये ते वे वहीं सहसा विलीन हो गये और फिर वही क्रोध, वही घृणा और वही तिरस्कार।

इधर प्रभातकिरन सोच रही थी, वे उसके मस्तक पर हाथ फेरेंगे चद्दर हटा कर उसका मुँह देखेंगे। कहेंगे "पगली डर मत। मैं तुझे क्षमा करता हूँ।"

पर हुआ उल्टा। वे वापस लौट गये। एक हाथ से पत्नी को पकड़ा और दूसरे हाथ से पुत्र को। दोनों को घसीटते हुये बाहर निकले। ड्राइवर ने कहा—"घर पहुँचा दूँ ?"

"नहीं, जले पर नमक न छिड़को। हमें तुम्हारी मोटर नहीं चाहिये।

क्रमशः प्रभातकिरन को मालूम हुआ कि उसके पिता क्रुद्ध होकर चले गये हैं। उसकी आँखें सजल हो उठीं और वह बिस्तर में गडी की गडी ही रह गई।
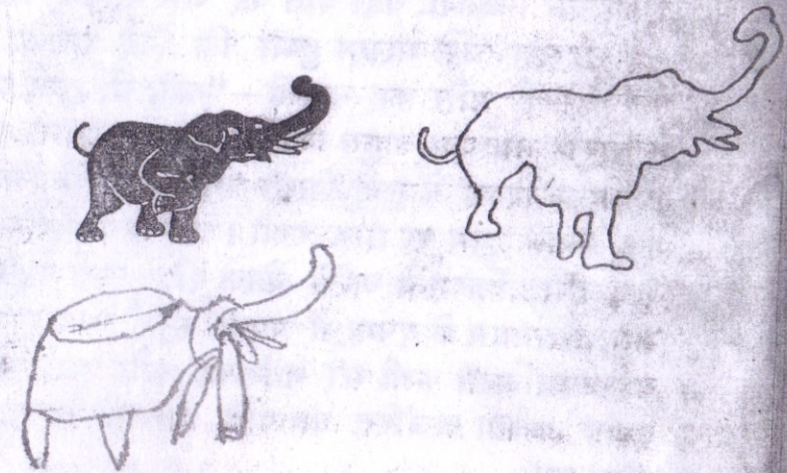
तीसरा परिच्छेद

प्रभातकिरन को जब मालूम हुआ कि उसके पिता उसको छोड़कर चले गये हैं, तब उसके दुःख का ठिकाना न रहा। उसने आँखें बन्द कर लीं और कल्पना करने लगी कि वह मर गई है। जीकर वह करेगी भी क्या? संसार में उसका कोई नहीं। उसने अपने हृदय पर हाथ रखा, वह धड़क रहा था। 'हाय! मैं मरूँगी नहीं।' उसने मन ही मन कहा। इस वाक्य को उसने कई बार दोहराया। क्रमशः यही बात वह जोर से कह उठी।

सहसा उसे मालूम हुआ कि कोई उसके मस्तक पर हाथ फेर रहा है और कह रहा है—"नहीं, मैं तुम्हें मरने नहीं दूँगा। तुम्हारा भविष्य बहुत उज्वल है। ऐसा जान पड़ता है कि परम पिता परमेश्वर ने तुम्हें किसी भारी काम के लिये संसार में भेजा है। अपने हृदय पर हाथ रखो। उस परमेश्वर का सङ्केत सुनो।"

प्रभातकिरन ने आँखें खोल दीं। सेठ रङ्गीलाल उसकी भय-भीत चितवन के दर्पण में अपनी सूरत देखकर लजा से गए। कहाँ यह अधखिली कली सी बालिका और कहां चौथेपन पर पहुँचा हुआ उनका जर्जरित तन और मिथ्या तृष्णा के वशीभूत उमङ्ग-हीन मन।

अपने प्रति सेठ जी का यह व्यवहार देख कर प्रभातकिरन की आँखें डबडबा आईं। हाय! पिता उसे यहां अकेली छोड़ कर क्यों चले गए!

सेठ जी ने अपनी जेब से रूमाल निकाला और उसके आँसुओं को पोंछते हुये कहा—"चिन्ता मत करो! मैं तुम्हारी समस्त इच्छाएँ पूर्ण करूँगा। बोलो, क्या चाहती हो?"

प्रभातकिरन ने अपने हाथों से उन्हें रोकने की चेष्टा की, अपनी आंखें बन्द कर लीं, अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया। पर सेठ जी न माने। वे उस पर अत्यन्त सदय जो थे; उसके भविष्य को उज्वल जो बनाना चाहते थे; उसकी सहायता जो करना चाहते थे।

प्रभातकिरन उठ कर बैठ गई। अब सेठ जी ने उसे अपने दोनों हाथों से कोमलतापूर्वक पकड़ा और कहा—"लेटी रहो! तुम्हारा हृदय अभी बहुत कमजोर है।'

प्रभातकिरन सिहर उठी। तुरन्त ही वह लेट गई ताकि सेठ जी के इस अवांछित स्पर्श से उसे मुक्ति मिले। पर नहीं, वे उसके मस्तक पर, तमाम शरीर पर, स्नेह से हाथ फेरने लगे। प्रभातकिरन ने अपने मन को समझाना शुरू किया। ये मेरे लिये पिता स्वरूप हैं। पिता अपनी पुत्री पर इस प्रकार स्नेह प्रदर्शित कर सकता है। उसने सेठ जी के चेहरे की ओर देखा। वह उसे मिट्टी की अधजली हांड़ी सा प्रतीत हुआ और दोनों आंखें ऐसी चमक रही थीं जैसे उस हांड़ी में दो टिकुलियां चिपका दी गई हों। उन आंखों में पिता के स्नेह की ज्योति उसे न दिखी, उनमें मुस्कुरा रही थी पैशाचिकता की प्यास। बम्बई का यह सबसे प्रतिष्ठित नागरिक, समाज का यह सबसे बड़ा नेता, भारत का यह भारी धन-कुबेर उमङ्गों से भरी एक युवती के हृदय को अपनी वासना की भट्टी में क्यों झोंक देना चाहता है? यदि पिता जी जानते होते कि यह आदमी ऐसा है तो शायद ही मुझे यहाँ अकेली छोड़ जाते।

उस समय सेठ जी के मन आ रहा था कि वे उसके नवपल्लव से अधरों पर एक चुम्बन अंकित कर दें—पर प्रभातकिरन के रोम-रोम से तिरस्कार का जो तूफान उठ रहा था उसकी छाया उन्होंने उसकी चितवन में देखली और उन्हें ऐसा करने का साहस न हुआ।

बिल्ली जैसे अपने पञ्जों में फँसी चुहिया को जरा दम ले लेने के लिये छोड़ देती है वैसे ही सेठ रङ्गीलाल ने प्रभातकिरन को

स्वतन्त्र कर दिया और कमरे में जरा टहले, फिर उन्होंने बाहर की ओर दृष्टि दौड़ाई।

जाली के बाहर से युवक सरयूप्रसाद कमरे के अन्दर झांकने की चेष्टा कर रहा था। सेठ रंगीलाल का हृदय धक से हो गया। वे उठ कर उसके पास तक आये। यह जानने के लिये कि इसने सब कुछ देख या ताड़ तो नहीं लिया है, बोले—"बाहर क्यों खड़े हो, अन्दर आओ।"

"यहाँ लोगों ने मुझे मना किया था कि सेठ जी बाहर निकलें तब अन्दर जाना।"

"यह मेरी बात गैरों के लिये है। तुम तो उसके......।"

"जी सेठ जी।"

"अन्दर आओ।"

सरयूप्रसाद कमरे में दाखिल हुआ। उसको देख कर प्रभातकिरन की जान में जान आ गई और वह कुछ मुस्कराई। सेठ रंगीलाल ने प्रभातकिरन की इस मुस्कराहट का अर्थ यह लगाया कि वह इस प्रकार उनकी शिकायत कर रही है। वे बहुत ही लज्जित और सङ्कुचित हो उठे। कमरे में बैठे रहने का उन्हें साहस न हुआ, उन्होंने सरयूप्रसाद से कहा—"इधर देखो! इनके पास बैठो! यह उठने न पावें। इनका हृदय बहुत कमजोर है। मैं अभी आता हूँ।"

यह उन्होंने इसलिये कहा कि यदि सरयूप्रसाद ने उनकी हरकतें देख ली हों तो भी उसे किसी बात का शक न हो और प्रभातकिरन भी उनके व्यवहारों का कोई ऐसा अर्थ न लगावे, जिससे वे बहुत गिरे हुये प्रतीत हों।

सेठ रङ्गीलाल के चले जाने पर प्रभातकिरन और सरयूप्रसाद दोनों कमरे में अकेले रह गए। सरयूप्रसाद ने कहा—"अब कहाँ जाने का इरादा है? तुम्हारे पिता तो तुम्हें छोड़ कर चले गये।"

"भाई ने तो नहीं छोड़ा?" प्रभातकिरन ने सरयूप्रसाद को ओर विनय भरी दृष्टि से देखा।

"नहीं, भाई ने नहीं छोड़ा, पर मैं तुम्हारा भाई बन सकूँगा इसमें मुझे सन्देह है।"

"क्यों?"

"मैं यहां बम्बई में अकेला रहता हूँ। बुरी सोसाइटी में पड़ गया हूँ।"

"मैं तुम्हें उस सोसाइटी से बचाऊँगी। मुझे अपने साथ ले चलो।"

सरयूप्रसाद खिड़की के बाहर दूर तक सड़क पर मोटरों का आना जाना देखने लगा। पर उसका मन उधर नहीं था। वह सोच रहा था, यदि बम्बई शहर में उसका अपना घर होता!

"क्या सोच रहे हो?" प्रभातकिरन ने पूछा।

"रात होने दो?"

"रात को कहां चलोगे?"

"उसी पेड़ के नीचे। वहीं बैठ कर सोचूँगा कि क्या करना चाहिये।"

प्रभातकिरन को अपने भाई, माता और पिता का ध्यान हो आया। उस पेड़ के नीचे से शायद वह उनकी बात सुन सके, शायद वह पेड़ पर चढ़ कर अपने घर में झांक सके। सरयू की यह बात उसे भी पसन्द आई।

दोनों अपने अपने मन में अपने भावी जीवन का प्रोग्राम बनाने लगे। सरयूप्रसाद सोच रहा था, वह प्रभातकिरन की रक्षा करेगा। देश में उसके यहां खेती होती है। कुटुम्ब परिवार के लोग खाते पीते हैं। कुछ दिन उनको रुपया न भेजेगा। उसकी आमदनी फिलहाल उन दोनों के लिये काफी होगी। उधर प्रभातकिरन सोच रही थी, वह सरयूप्रसाद के एकाकी जीवन में सुख का सञ्चार करेगी।

उसको बुरी सोसायटी में न जाने देगी, उसकी गृहस्थी की सम्भाल करेगी, अपने हाथ से ताजा स्वच्छ भोजन बना कर उसे खिलाएगी। उसको कोई कष्ट न होने देगी।

इस प्रकार दोनों कभी सोचते और कभी बातें करते। यद्यपि उनका परिचय एक ही दिन पूर्व से था, तथापि वे इस तरह घुल मिल गए जैसे बचपन से वे साथ साथ खेले और बढ़े हों। सरयूप्रसाद से सवाल कर करके प्रभातकिरन ने उसके घर का सारा हाल मालूम कर लिया। घर में उसके बड़े भाई हैं, भौजाई है। उनके बच्चे दो लड़कियां और एक लड़का है। भौजाई बड़ी जालिम है। सरयू की पत्नी को वह बहुत सताती थी। अच्छा हुआ जो बेचारी मर गई। सरजू जब अपनी पत्नी की कहानी बताने लगा तब प्रभातकिरन की आंखें डबडबा आईं। यह बात सरयू ने देखी और उसने विषय बदल दिया। प्रभातकिरन ने अपने घर की अवस्था सरयूप्रसाद से स्वयं बतायी। माता एक बङ्ग महिला और पिता पञ्जाबी खत्री हैं। दो वर्ष हुये बेचारी माता बेरी बेरी के कारण अन्धी हो गई है। भाई अबोध है। दोनों अपने अपने देश से दूर, समाज से पृथक बम्बई में एकाकी जीवन व्यतीत कर रहे हैं। कुछ यह भी कारण है जो उसकी शादी नहीं हो सकी।

"मैं तुम्हारा देश देखने चलूँगी।" प्रभातकिरन ने कहा।

"न! न! मैं तुम्हें वहाँ न ले चलूँगा। मेरी भौजाई तुम्हारी बड़ी दुर्गति करेगी।" सरयू बोला।

"मैं उसकी सेवा करूँगी! अपने स्नेह से उसे जीत लूँगी।"

"असम्भव। और फिर यहाँ तो हम तुम एक साथ रह भी सकते हैं। वहाँ बिरादरी से एक दम निकाल दिये जायंगे। मैं प्रतापगढ़ जिले का प्रतिष्ठित सोमवंशी क्षत्रिय हूँ। मेरा तुम्हारा विवाह सम्भव नहीं हो सकता।"

'अच्छा, तो आपने समझा था कि मैं आपकी पत्नी बन कर चलूँगी।'

'भौजाई की सेवा का अधिकार तो तभी मिलेगा।'

प्रभातकिरन कुछ झेंप सी गई।

सरयूप्रसाद बोला—'मगर मैं अब क्षत्रिय नहीं रहा। मैं मिल का मजदूर हूँ। लोग मुझे बाबू कहते हैं। कुछ लिख पढ़ जो लेता हूँ। पर हूँ मजदूर ही। और मजदूर की जाति नहीं होती! इसीलिये तो मैंने अपने नाम में से सिंह निकाल कर प्रसाद जोड़ लिया है। मैं बम्बई में ही उम्र काट दूँगा।'

'नहीं, यह कदापि न होगा। अपने समाज से पृथक होकर मेरे माता पिता दोनों कष्ट पा रहे हैं। तुम्हें मैं अपना समाज छोड़ कर बम्बई में बसने की सलाह न दूँगी!'

'वे कष्ट इसलिये पा रहे हैं कि बाबू बने हैं। मजदूर नहीं बने। जात-पांत का मोह बनाए हैं और मैं जात-पात को गोली मार दूँगा। मनुष्य एक और उसकी जाति एक!'

'यही तो मैं भी कहता हूँ।' कहते हुये सेठ रङ्गीलाल ने कमरे में प्रवेश किया। उनके साथ उनके निजी डाक्टर और नर्सें थीं।

डाक्टर ने प्रभातकिरन की परीक्षा की, नर्सों ने उसे सहारा दिया। डाक्टर बोला—'यह युवती एकाएक बहुत चिंतित हो उठी थी। इसी से गश आ गया था। अब पूर्ण स्वस्थ है।'

'मैं अस्पताल से जा सकती हूँ, डाक्टर साहब?'

'हाँ, पर कोई ऐसी बात न हो जिससे हृदय उत्तेजित हो उठे।'

'हृदय को मुट्ठी में बांध कर रखूंगी, डाक्टर साहब!'

'अभी मैं तुमको एक हफ्ता कहीं न जाने दूँगा। यहां तुम्हारा जी न लगे तो मेरे घर पर चल कर रह सकती हो।'

'हाँ यह अच्छा होगा।' डाक्टर ने कहा और वह चला गया। उसके साथ नर्सें भी चली गयीं।

'तुम क्या काम करते हो जी?' सेठ जी ने सरयूप्रसाद से पूछा।

'जी, सेठ जी, मैं आपके मिल में नौकर हूँ।'

'तुम्हारा नाम?'

'सरयूप्रसाद।'

सेठ जी थोड़ी देर तक सोचते रहे। फिर बोले—'तुम्हारी शिकायत आई है। तुम मजदूरों को बहकाते हो। मुझे तुम्हें मिल से निकालना पड़ेगा।'

प्रभातकिरन को अपना यह अवलम्ब भी निर्बल पड़ता जान पड़ा। वह कुछ बोली नहीं, पर चिन्तित हो उठी।

सरयूप्रसाद ने कहा—'मैं अपने को स्वयं मजदूर समझता हूँ। अतएव उनके साथ हमदर्दी रखता हूँ। वे मुझसे प्रेम करते हैं। अतएव मैं उनके दुःख सुख की बात सोचता हूँ। यह कोई अपराध नहीं है। आप मुझे निकाल देंगे तब भी मैं अपना यह काम जारी रखूंगा।'

सरयूप्रसाद के इस उत्तर से प्रभातकिरन प्रसन्न हुई। सेठ जी ने कहा—अभी तुमने कहा था न कि मनुष्य एक है। उसकी जाति एक है।

'हाँ'!'

'तब मजदूर और मालिक का भेद कैसा? वे दोनों एक क्यों नहीं?'

'वे दोनों एक हैं। पर मालिक अपने को ऊँचा, मजदूर को नीचा समझते हैं। मालिकों की समझ में यह आना चाहिये कि दोनों समान हैं।'

'मैं दोनों को समान समझता हूँ।'

'तभी तो मैं आपकी मिल में हूँ।'

सेठ जी सरयूप्रसाद के इस उत्तर से प्रसन्न हुये। बोले—'तुम

समझदार जान पड़ते हो। मिल मजदूरों के बालकों के लिये मैं एक पाठशाला खोलना चाहता हूँ। तुम उसका चार्ज ले सकोगे?'

'अगर आपकी आज्ञा होगी?'

'और मैं मजदूरों की स्त्रियों के लिये एक शिक्षण-मन्दिर स्थापित करना चाहता हूँ। तुम उसका चार्ज ले सकोगी?'

'मैं तो मजदूर नहीं हूँ?' प्रभातकिरन बोली।

'तुम्हें मजदूरों से हमदर्दी नहीं।'' सरयूप्रसाद ने पूछा।

प्रभातकिरन की स्मृति पर वे मजदूर अंकित हो उठे जो उसे पिछली रात ट्राम पर मिले थे। उन पशु-तुल्य मानवों के साथ उसकी हमदर्दी कैसे हो सकती है? उनके बीच में तो उसके लिये घड़ी दो घड़ी रहना भी असम्भव है। फिर उसके सामने सेठ जी का चित्र आया। वे उसे उन मजदूरों से भी निम्न धरातल पर जान पड़े। पशुता का अंश उनमें उसे और भी अधिक जान पड़ा। उनसे तो वे मजदूर ही अच्छे।

प्रभातकिरन कुछ कहने ही वाली थी कि सेठ जी बोले—"अपना अपना स्वभाव है। खैर, इस बात को जाने दीजिये। मेरे दिमाग में एक चीज और है। मैं एक कला भवन की स्थापना करना चाहता हूँ। उसका ध्येय होगा, भारतीय नृत्य, सङ्गीत आदि को नवजीवन प्रदान करना, उसका चार्ज ले सकोगी?'

यह प्रभातकिरन के मन की बात थी। प्रलोभन बहुत बड़ा था। पर वह जानती थी, इसका मूल्य भी बहुत मँहगा चुकाना पड़ेगा। अतएव वह चुप रही। दरवाजे से बाहर की ओर अन्यमनस्क भाव से देखने लगी।

सेठ रङ्गीलाल अपने मन में क्षुब्ध हो उठे। उनकी ऐसी उपेक्षा किसी और नारी ने नहीं की थी। उनके पास धन था। उसे वे संसार में सबसे बड़ी चीज समझते थे। पर प्रभातकिरन के पास रूप था, यौवन था, चरित्र था। ये धन से भी अधिक प्रभाव रखते

वाली चीजें थीं। सेठ जी उस चकोर की तरह इधर उधर निराशा-भरी दृष्टि से देख रहे थे, जो चन्द्रमा की ओर उड़ते उड़ते थक गया हो और मजा यह कि यह प्रारम्भ ही था! समाधिस्थ योगी की भाँति वे क्षण भर को मौन गम्भीर हो उठे। सोचने लगे, अब क्या उपाय करें? एक एक मिनट उनका कीमती था। मिनट मिनट पर उनके इशारे पर कञ्चन बरसना था। लाखों के सौदे वे करते थे। और इधर यह युवती थी जिसका इस ओर ध्यान ही नहीं था, जो उनकी जरा भी कृतज्ञ नहीं थी कि उन्होंने उसे इतना समय दिया। उसकी दुनियां दूसरी थी। सेठ जी दूसरी दुनियां के जीव थे।

प्रभातकिरन उठ खड़ी हुई। बोली—'सेठ जी इस समय तो मुझे जाने दीजिये। मैं सोच कर फिर बताऊँगी'। 'ओफ इतनी उपेक्षा!' सेठ रङ्गीलाल उत्तेजित से हो उठे और उन्होंने प्रभात-किरन के मुँह की ओर देखा। उसकी बड़ी बड़ी आँखें, सुडौल नासिका, काली घनी भौहें, मूंगे से अधर चन्द्रमा के एक टुकड़े सी ठुड्डी, सुचिक्कन कपोल, वे देखते के देखते ही रह गये। उफनते दूध को पानी की दो चार बूँदें जैसे शान्त कर देती हैं वैसे ही प्रभात-किरन की शांत मुखमुद्रा ने उनके उत्तेजित मन को तुरन्त सुव्य-वस्थित कर दिया।

जैसे कोई प्रवीण वकील न्यायधीश से किसी प्राणदण्ड पाने वाले अपराधी के ऊपर दया करने का तर्क करता है वैसे ही वे कहने लगे—'सम्भवतः तुमने मेरा तात्पर्य्य ठीक ठीक नहीं समझा है। मैं अपने आपको राष्ट्र का एक तुच्छ सेवक समझता हूँ। अपने धन को राष्ट्र का धन समझता हूँ। मेरी सदा से यह नीति रही है कि राष्ट्र के जो युवक या युवतियां होनहार हों, जिनमें राष्ट्र का मुख उज्वल करने की ज्वाला हो, उनका मार्ग अपने धन से सुगम बनाऊँ। तुममें प्रतिभा है। कला के क्षेत्र में तुम्हारी उपस्थिति मात्र नवजीवन ला

सकती है अतएव मैं अपने धन का एक बड़ा हिस्सा तुम्हारी मर्जी पर छोड़ देना चाहता हूँ ताकि तुम सांसारिक चिन्ताओं से मुक्त होकर कला की उन्नति कर सको। यदि तुमने मेरी इस प्रार्थना को ठुकराया तो अवसर निकल जायगा।

प्रभातकिरन कुछ न बोली। सेठ रङ्गीलाल को जान पड़ा, जैसे वह बालिका एक अडिग चट्टान हो और उनका हृदय महासागर की भाँति लहराता हुआ उसके चरण तक चला आ रहा हो पर उसे अपने साथ बहा ले जाने में असमर्थ हो।

प्रभातकिरन उठकर चलने लगी। सेठ जी ने कहा—'अच्छा ठहरो, मैं टैक्सी बुलवादूँ।'

उन्होंने बिजली का बटन दबाया। बाहर घण्टी बज उठी। एक नौकर उपस्थित हुआ। उसे सेठ जी ने अपनी निजी मोटर-कार उपस्थित कराने की आज्ञा दी। उनकी आज्ञा का तुरन्त ही पालन किया गया।

मध्यमवर्ग के अपने इन मेहमानों की खातिर करने में सेठ रङ्गीलाल को आज जरा भी सङ्कोच नहीं हो रहा था। वे अपने आपको परम सौभाग्यशाली समझ रहे थे। अतएव वे स्वयं उन्हें मोटर तक पहुँचाने आये। अपने हाथ से मोटर का आइने के समान चमकता हुआ हैंडिल घुमाया और अन्दर की सीट पर जाने का रास्ता खुल गया। उस पर उन्होंने बड़े स्नेह से प्रभातकिरन को चढ़ने में सहारा दिया। उसके बाद फिर आदरपूर्वक सरयूप्रसाद को बैठाते हुए कहा—'मुझसे मिलते रहना, किसी मामले में मेरी सहायता की आवश्यकता हो तो निःसङ्कोच मुझसे कहना। और तुम प्रभात-किरन? मेरी बात पर गौर करना। परसों मेरे बेटे का जन्म दिवस है। तुम दोनों सादर निमन्त्रित हो। आना जरूर! मैं मोटर भेजूँगा।'

सेठ जी यह सब एक साँस में कह गए। पता नहीं यह सब

सरयूप्रसाद और प्रभातकिरन ने ध्यान से सुना या नहीं पर दोनों ने सेठ जी का अभिवादन किया। मुस्कान की बिजली प्रभातकिरन के अधरों से उछल कर सेठ रङ्गीलाल के होठों पर बिखर गई।

अब वे बम्बई की एक विशाल सड़क से गुजर रहे थे। उस सड़क से प्रभातकिरन और सरयूप्रसाद दोनों पहले भी गुजर चुके थे! पर आज उन्हें सड़क का नकशा बदला हुआ जान पड़ा। सड़क पर चलता हर एक राही उन्हें उनका अभिनन्दन करता हुआ जान पड़ा।

मार्ग में ड्राइवर ने पीछे की ओर मुड़कर सरयूप्रसाद से पूछा — किधर चलना है ?

'जहाँ आपकी मर्जी हो उतार दीजिये। मेरा घर ऐसा नहीं, जहाँ ऐसी नम्बर एक मोटरें पहुँचें।' सरयूप्रसाद ने कुछ सङ्कुचित होते हुये कहा।

इसी समय सामने से दुबरी, घसीटा और भूरी आते हुये दिखाई पड़े। ड्राइवर उन्हें देखकर पहचान गया। सरयूप्रसाद से बोला — 'आपके साथी सामने से आ रहे हैं।'

सरयूप्रसाद ने चिल्लाकर कहा — 'मोटर की चाल तेज करो। इनसे बचकर निकल चलो।'

पर वे तीनो रास्ता रोककर खड़े हो गए।

'सरयू भैया! कहां जा रहे हो ?' दुबरी बोला।

'हम मोटर पर कभी नहीं चढ़े।' घसीटा ने कहा।

'सरयू! हम भी आदमी हैं।' भूरी चिल्लाया।

और रास्ता ही क्या था? सरयू को ड्राइवर से कहना पड़ा — 'भाई इनको भी बैठाल लो।'

तड़ाक पड़ाक तीनों मोटर में घुस आये। एक सरयू के बगल में और दो ड्राइवर के बराबर बैठे। वे कभी एक दूसरे को देखते, कभी सरयू की ओर देखते, कभी प्रभातकिरन की ओर देखकर वे

इशारा करते। उनकी खुशी का ठिकाना नहीं था। चिल्लियों की भाँति वे चौकन्ने और बन्दरों की भाँति चञ्चल हो रहे थे! आज बम्बई में उनके बराबर कौन था। दुबरी ने कहा 'भैया' आज मैं कुछ मोटा जान पड़ता हूँ।' घसीटा बोला—'अभी सड़क पर था तो मेरे कपड़े मैले लगते थे। अब तो जान पड़ता है, जैसे रेशम के हों!' भूरी ने कहा—'उधर देखो, पुलिस वाला हमको सलाम कर रहा है। अभी-अभी हम उधर से निकले थे तब डाट बता रहा था।'

'बस बहुत घूम लिये! उतरो, जाओ?' सरयू ने कहा।

'और सरयू भैया! तुम कहाँ जा रहे हो?'

'और रानी साहब! आप कहाँ जा रही हैं?'

'और हम लोग कहाँ जा रहे हैं?'

वे तीनों लगे इसी प्रकार जोर जोर से बकने। बीच समुद्र से जैसे कोई ऊँची लहर उफनाती बलखाती किनारे की तरफ आती है वैसे ही यह मोटर बम्बई शहर के विशाल आवागमन के समुद्र में निरुद्देश चली जा रही थी। और उस पर बैठी प्रभातकिरन सोच रही थी —'यह खम्भे से टकरा कर चूर चूर हो जाती तो कितना अच्छा होता।' इस प्रकार के असभ्य अशिक्षित पुरुषों के साथ बैठी होने के कारण वह मारे लज्जा के मोटर के एक कोने में गड़ी जा रही थी!

विक्टोरिया पार्क के मुखद्वार पर पहुँच कर ड्राइवर ने पूछा— 'अन्दर चलें?'

'हम तो अपनी चाल के सामने उतरेंगे?'

'और रानी साहब आप?'

'और सरयू तुम?'

'भाई पहले इन्हें उतार दो?' सरयू ने कहा और चाल का रास्ता बताया।

पार्क के पिछवाड़े एक बहुत बड़ा मकान था, जिसकी हर

मञ्जिल में सैकड़ों खिड़कियाँ थीं। खिड़कियों से मैले कपड़े लकड़ी के गट्ठड़, नङ्गे, लड़के आदि दीख रहे थे, जो रहने वालों का विज्ञापन कर रहे थे। मकान के सामने एक छोटा मैदान था। घसीटा ने उसी मैदान में मोटर रुकवाई। दुबरी ने उसका हार्न बजा दिया। देखते ही देखते मोटर के गिर्द सैकड़ों लड़के, मर्द औरतें जमा हो गए, जैसे कोई अनहोनी घटना घटी हो, जैसे कोई बहुत बड़ा तमाशा आया हो?

हर एक का ध्यान प्रभातकिरन की ओर था। हर एक जानना चाहता था, वह कौन है?

प्रभातकिरन ने सरयू से पूछा—'तुम यहीं रहते हो?'

'हाँ, तीसरी मञ्जिल में।'

'मुझे वहां ले चलो।'

सरयू कुछ कहे, इसके पहले ही दुबरी ने उतर कर रास्ता खोल दिया—'चलिये रानी साहब?'

प्रभातकिरन चल पड़ी। दुबरी, घसीटा, भूरी शान में ऐंठते हुये आगे आगे चले।

एकत्रित लोगों में हल्ला मच गया। सरयू बहू व्याह करके लाया है।

तुरन्त ही सरयू की कोठरी में तिल धरने को भी स्थान न रह गया। आस पास के कमरों की बूढ़ी जवान स्त्रियाँ प्रभातकिरन को घेरकर बैठ गयीं!

'बहू बड़ी सुन्दर है! साक्षात लक्ष्मी है। इन्द्र की परी है। सरयू इसके लायक वर नहीं है।' आदि बातें वे कहने लगीं।

प्रभातकिरन मन ही मन सोच रही थी—'क्या अच्छा होता यदि यह सब सच होता?' उसने उनकी धारणा को गलत साबित करने की चेष्टा नहीं की। गरीब के घर में आई हुई बहू के समान वह अपनी साड़ी से अपना मुँह ढककर मस्तक नीचा करके बैठ

गई। और आदरपूर्वक सबका अभिवादन, आशीर्वाद ग्रहण करने लगी।

सरयूप्रसाद यह सब देख सुनकर किंकर्तव्य विमूढ़ हो उठा। एक बूढ़ी स्त्री ने उसके कान में कहा—'बेटा, चार पैसे के बताशे मँगवा कर लड़कों को बँटवादे। यह खुशी का अवसर है।'

चौथा परिच्छेद

इस प्रकार कोई एक महीना बीत गया और प्रभातकिरन उस कोठरी के बाहर नहीं निकली। ग्लानि और लज्जा से वह अन्दर ही अन्दर घुली जा रही थी। अन्धी माता, अफीमची पिता, और छोटे भाई का ध्यान उसे चौबिसों घण्टे बना रहता था। उसके बगैर उनका काम कैसे चलता होगा? कहाँ वह सोच रही थी अपने उस छोटे से परिवार के लिये वह ब्याह न करेगी, उसी की सेवा में सारी आयु बिता देगी और कहां जीवन के प्रभात काल में ही उसे अपना वह प्यारा परिवार छोड़ना पड़ा। हाय वह पिता से बोली क्यों नहीं, वे उसे देखने ही तो आये थे। उसे वे अवश्य क्षमा कर देते और अपने साथ लिवा जाते। अब क्या हो?

सरयू उसका मन बहलाने की लाख चेष्टाएं करता; पर सब निष्फल जातीं। अपनी छोटी सी आमदनी के आधार पर उसने घर में थोड़ी बहुत पूँजी सञ्चित कर रखी थी, वह सब उसने प्रभातकिरन को सुखी बनाने में व्यय करदी। कानों के लिये बुन्दे, नाक के लिये कील, चूड़ियाँ, साड़ियाँ, जैकेट, क्रीम, पाउडर, रूमाल, वह सभी कुछ लाया। प्रभातकिरन ने आदर और स्नेह से उन सब उपहारों को ग्रहण किया। पर उससे लेकर जहाँ उन्हें रक्खा वहीं वे रखे रह गए। हाँ इस दुख की घड़ी में भी उसने एक काम किया। सरयूप्रसाद की उस छोटी सी कोठरी को उसने स्वर्ग बना दिया। पहले सरयूप्रसाद को उसमें अपने लिये भी टांग फैलाने की जगह न दीखती थी और अब उसमें दिन भर मुहल्ले के लड़के लड़कियों का स्कूल लगा रहता। जब लड़के हटते, वह पुराने फटे टाट को समेट कर रख देती और वह कोठरी रसोई घर में बदल जाती।

जब खाना पीना हो चुकता तब बंद-बासन वह समेट कर रख देती और वह कोठरी बैठक बन जाती। फिर उसमें घसीटा, भूरी और दुबरी आकर घण्टों ताश खेलते और गपशप करते। रात को वही कोठरी शयनागार बनती। पास पास दो चटाइयाँ बिछाकर दोनों सोते, घण्टों बातें करते, भविष्य के लिये मसौदे बाँधते। पर भूल से भी उन्होंने एक दूसरे का अङ्ग-स्पर्श नहीं किया।

सारा मुहल्ला यह जानता था कि वे दोनों पति पत्नी की भाँति रह रहे हैं पर वास्तव में वे भाई बहन की भाँति रह रहे थे। प्रभात किरन सोचती कि क्या कभी उसके या सरयूप्रसाद के घर के लोग इस बात का विश्वास करेंगे? सरप्रसाद जो बुरी सोसायटी में पड़ गया था, इस प्रकार का आचरण रख सकेगा यह स्वयं उसके लिये एक आश्चर्य की बात थी।

सरयूप्रसाद ही नहीं घसीटा, दुबरी और भूरी पर भी इसका असर पड़ा। उन्होंने हौली पर जाना, बुरी औरतों से मिलना जुलना छोड़ दिया। प्रभातकिरन से उन्होंने पढ़ना और सङ्गीत सीखना शुरू किया। वे सब भी बड़े आदमी बनेंगे, बड़े आदमियों के साथ बैठें उठेंगे, प्रभातकिरन उनको नरक में से निकाल कर स्वर्ग में पहुँचा देगी। इस प्रकार वे सोचते।

उनका यह परिवर्तित आचरण उस औरत को बहुत बुरा लगा, जो मिल में उन्हीं के साथ काम करती थी और उनकी आमदनी का बहुत कुछ भाग हथिया लेती थी। उसे यहाँ तक क्रोध आया कि वह प्रभात किरन से लड़ने आई। कमरे में घुसते ही उसने कहा—'रूप का इतना गुमान है नखरे भी बहुत बड़े हैं तो फिर मजदूरों के मुहल्ले में क्यों आई? चली है बड़ी बनने! दूसरों की रोजी छीनने!'

'मुझसे कोई अपराध हुआ बहन?' प्रभातकिरन ने विनय से कहा।

पूछती है कोई अपराध हुआ ? यह मेरा घर है, यह आदमी मेरा है; दोनों पर कब्जा करती चली जा रही है...।'

उसी समय सरयूप्रसाद कमरे में आ गया। उस औरत को वहाँ देखकर जल उठा। बोला—'तू क्यों यहाँ आइ चुड़ैल ?'

'मालूम है कि नई नवेली लाये हो ?'

'बस, इसी वक्त यहाँ से निकल जा। मैं तेरा मुँह नहीं देखना चाहता ?'

'मेरा जी कलपाओगे तो तुम भी सुख न पाओगे। मैं अभी जाकर थाने में रिपोर्ट लिखाती हूँ कि भले आदमियों के मुहल्ले में इसने एक बदचलन औरत टिका रखी है और सबका धर्म बिगाड़ रहा है। सबका धन लूट रहा है।'

सरयू ने उसे धक्का देकर कोठरी के बाहर निकाल दिया और अन्दर से दरवाजा बन्द कर लिया। बाहर उसने चिल्ला चिल्ला कर मुहल्ला सिर पर उठा लिया। लगी जोर जोर से कहने—'मैं उसे खूब जानती हूँ। डाक्टर रामभरोस की लड़की है। उसकी जातपात का कोई ठीक नहीं। कहने को डाक्टर है, पर इसी चुड़ैल के कारण उसके यहाँ सैकड़ों आते जाते थे और कुछ दे जाते थे। सरयू ने सोचा, 'यह रोजगार अच्छा है' और इसे बहका लाया। जो अपने बाप की न हुई वह इसकी क्या होगी ?'

यह लकचर सुनने के लिए तमाम आदमी जमा हो गये। पर उस औरत को सब जानते थे, अतएव उसका बहुत प्रभाव न पड़ा। वह बड़बड़ाती हुई और पुलिस लिवा लाने की धमकी देती हुई चली गई।

यद्यपि उस दुष्टा स्त्री ने प्रभातकिरन को बदनाम करने की चेष्टा की थी, जिस गरीबी के जीवन को उस बेचारी ने अंगीकार किया था; उससे भी उसे वंचित करना चाहती था तथापि उसकी बातें प्रभातकिरन को प्रिय लगीं, क्योंकि उसने उसके पिता की चर्चा

की थी। उस स्त्री का अंतिम वाक्य प्रभातकिरन को खलने लगा, 'जो अपने बाप की न हुई वह इसकी क्या होगी ?' इस वाक्य में प्रभातकिरन को बहुत कुछ सचाई जान पड़ी। हाय, उसने पिता की आज्ञा क्यों न मानी ? फिर सेठ जी के अस्पताल में पिता की बात का उत्तर क्यों न दिया ? वे उसे देखने ही तो आए थे। फिर वहीं उसी दिन घर क्यों न गई ? शायद डाट डपट कर वे चुप हो जाते, उसके अपराध को भुला देते ? पर अब तो शायद उसका अपने घर में रह सकना असम्भव है। पानी से बाहर निकाल कर फेंकी हुई मछलो की तरह वह तड़फड़ाने लगीं। हाय, बेचारी अन्धी माता किस प्रकार भोजन बनाती होगी ? छोटा भाई कैसे खाता, पीता, स्कूल जाता होगा ? उसके बगैर वह कैसे रहता होगा ? और डाक्टर ? शायद ही अब किसी मरीज से बात करते हों ? इन सब बातों पर वह जितना ही गौर करती, उतना ही उसका हृदय फटने लगता। यदि पिता उसकी इस दशा को समझ सकते ? उन्हें, कौन समझावे ? उसकी तरफ से कौन बोले ?

इधर सरयूप्रसाद सोच रहा था कि इस कोठरी को वह तुरन्त ही छोड़ देगा और किसी ऐसी जगह जाकर रहेगा जहाँ इस दुष्ट स्त्री की पहुँच असम्भव हो। ओफ, उसने क्यों इसे इतना मुँह लगाया ? उसे अपने आप पर बड़ी ग्लानि हुई। सरयूप्रसाद का ध्यान प्रभातकिरन की ओर गया। कमरे में इधर उधर को पड़ी वस्तुओं को वह इस प्रकार रख रही थी जैसे कहीं जाने की तैयारी कर रही हो। सरयू का माथा ठनका। वह उसके निकट गया, जैसे उससे कोई बड़ा अपराध हो गया हो और वह उसके लिए माफी चाहता हो। प्रभातकिरन ने मुस्करा दिया। इसका स्पष्ट अर्थ यह था कि जो कुछ हुआ था उससे वह प्रभावित नहीं हुई थी। इससे उसे सन्तोष हुआ। पर क्षण क्षण पर बदलती हुई उसकी मुखाकृति से सरयूप्रसाद को यह समझने में देर न लगी कि इस मोहिनी नारी

के हृदय में कोई ऐसा तूफान उठ रहा है जो उन दोनों को झकझोर डालेगा। इससे वह कुछ चिंतित भी हुआ।

उसने विषय को बदलने की चेष्टा करते हुए कहा—'बहन, जब से तुम यहाँ आई हो, इस घर से बाहर नहीं निकली हो। मैं चाहता हूँ, आज तुम्हें कहीं घुमा लाऊँ।'

'कहाँ चलोगे ?'

'उस वृक्ष के नीचे जिसने हमें मिलाया है ?'

'कब चलोगे ?'

'जब कहो ?'

'इसी वक्त !'

सरयूप्रसाद ने कहा—'वहाँ चलने का यह समय नहीं है। आज फिर पूर्णमासी है। चाँदनी रात में वह स्थान बहुत ही मनोरम लगता है। दिन डूबने के बाद चलेंगे ताकि दस बजे तक लौट आवें।'

सरयूप्रसाद ने यह प्रभातकिरन के मन की बात कही थी। वह जानता था कि वह अबला अपने माता पिता और भाई के लिये व्याकुल है। कई बार उससे वह उनका जिक्र कर चुकी थी। कई बार वह हिम्मत बाँध चुकी थी कि उस वृक्ष पर चढ़कर वह अपने घर में झाँकेगी। सरयूप्रसाद यह भी जानता था कि सिवाय उस स्थान के वह शायद ही कहीं और जाने को तैयार हो। इसलिये उसने यह प्रस्ताव किया था।

प्रभात किरन इस बात पर राजी हो गई। उसमें जैसे नई जान आगई। वह गुनगुनाने लगी। खिड़की से बाहर दूर एक मीनार पर लगी हुई घड़ी की सुइयों को वह सम्बोधित करके कहने लगी—'मेरी सहेलियो ! आज जरा जल्दी जल्दी चलो। आज मैं अपनी माता से मिलने जाऊँगी।'

समय जैसे चादर तान कर सो गया हो और उसे जगाने और

चलाने की आवश्यता हो। कमरे के जिस हिस्से में धूप पड रही थी वहाँ से हटने का नाम ही न लेती थी। एक-एक पल पहाड़ से प्रतीत होने लगे। इर्द गिर्द के वायुमण्डल में जितनी स्थिरता दिखाई पड़ रही थी उतना ही उसका मन चंचल था। वह चंचल मन कल्पना कर रहा था कि दिन कब रात हो गया है और वह घर से निकल पड़ी है। सड़क पर बिजली की बत्तियाँ, ट्रामों और मोटरों का आवागमन जन-कोलाहल, भीड़भाड़ सबके सम्पर्क में आती, सबको छोड़ती, मानो वह चली जा रही है। फिर वह कमरे में बिखरी वस्तुओं को देखती, चटक धूप को देखती, उसे असलियत का ज्ञान होता और वह उदास हो उठती।

'आज दिन नहीं डूबेगा !' उसने कहा।

'ऐसा कौन सा दिन है जिसे निशा रानी ने अपनी काली चादर में समेट कर बाँध न लिया हो ?' सरयूप्रसाद ने कहा। फिर वह थोड़ा मुस्करा कर बोला—ऐसा कौन सा पुरुष है जिसकी, स्त्री ने यही गति न की हो ?'

'अच्छा ?' प्रभातकिरन उसकी ओर देखकर मुस्कराई—'तो आप दिन हैं ?'

'कम से कम आज का दिन मैं जरूर हूँ। उसी की भाँति तुम मुझे भी तो पीछे छोड़ देना चाहती हो ?'

प्रभातकिरन की आँखें सजल हो आईं। वह बोली—'नहीं मेरा और तुम्हारा हृदय एक है। हम दोनों एक हैं। और मेरे लिये तुम वह सुन्दर दिन हो जिसमें शाम नहीं है, रात नहीं है। तुम्हें मैं पीछे नहीं छोड़ना चाहती। तुम्हारे पीछे पीछे चलना चाहती हूँ।'

सरयू का हृदय गदगद हो गया। यही तो वह उस स्त्री से सुनना चाहता था। उसके मनमें आया कि वह उसे अपनी बलिष्ठ बाहों में आबद्ध करले और कहे—'प्रियतमे ! हम तुम एक हैं।' परन्तु जैसे ही वह इस इरादे से प्रभातकिरन की ओर बढ़ा उसका

रुख बदल गया। उसकी मुस्कान गम्भीर उदासी में बदल गई, वह जहाँ का तहाँ खड़ा रह गया, जैसे परिस्थिति के धनुष पर चढ़ा हुआ वह कोई तीर हो, जिसके मुक्त होने का समय न जाने कब आएगा।

उसके मन का भाव ताड़ कर प्रभातकिरन कोठरी के बाहर निकल आई। सामने के गलियारे में कई लड़कियाँ खेल रही थीं, उसे देखकर वे उसकी ओर लपकीं। 'दीदी ! मेरे बालों में कङ्घी कर दो।' वे उससे आग्रह करने लगीं।

प्रभातकिरन कमरे में उन्हें ले आई और फर्श पर बिछी चटाई पर बैठकर एक-एक के बाल सँवारने लगी। सरयू कोठरी के बाहर जाने लगा।

'कहाँ जा रहे हैं ?' प्रभातकिरन ने पूछा—'रुकिये ! कुछ पानी पिये जाइये। और हाँ, मुझे बाजार से कुछ चीजें मँगवानी हैं।'

'क्या ?'

'भाई के लिए खिलौने मिठाई; और······।'

'पिता के लिए अफीम ?'

'हाँ, अगर ला सको।'

'अच्छी बात है।' कहते हुए सरयू मुस्कराया—'मेरे पिता अफीमची होते तो उन्हें मैं अपनी अंगुलियों पर नचाता ?'

'आपको नहीं मालूम जो अफीम के वश में होता है उसको कोई अपने काबू में नहीं कर सकता। वह किसी की नहीं सुनता।'

'जो अफीम खिलावे ? उसकी भी नहीं ?'

'हाँ उसकी शायद सुन सकता है।'

'तब मैं उन्हें अफीम खिलाऊँगा ?' सरयू के चेहरे पर एक शरारत भरी मुस्कान थी।

'और अफीम खिलाकर तुम उनसे कहोगे, अपनी बेटी मुझे

दे दो, क्यों ?' प्रभातकिरन ने एक कोने में रखी एक अलमारी खोलते हुए कहा।

'वह तो उन्होंने बिना मांगे ही दे दी है ?' सरयू मुस्कराया।

'किसी गड्ढे में मुँह धो लिया है न ?' प्रभातकिरन ने सरयू की ओर एक तश्तरी में दो बासी पराठे बढ़ाते हुए कहा।

सरयू पराठे खाने में लग गया। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। पर उसके चेहरे पर एक विचित्र प्रकार की कान्ति दीप्त हो उठी थी। प्रभातकिरन की इस बात से उसने अपने आपको उसके बहुत निकट पाया।

जब से इस मकान में लाया था, आज प्रथम बार सरयू ने प्रभातकिरन को प्रसन्न देखा। इसी में उसकी भी प्रसन्नता थी। खा पीकर बाजार गया और आवश्यक चीजें ले आया।

जब निशा ने दिन के शरीर पर अपना काला अंचल डालकर उसे सुला दिया तब ये दोनों प्राणी दो कबूतरों की भाँति अपने उस दरबे से निकले। मार्ग में किसी परिचित से भेंट-मुलाकात न हो जाय, यह सोच कर वे पैदल ही तेज रोशनी के स्थानों से बचकर निकलते हुए चले। सारा बम्बई शहर प्रेतनगर की भाँति उन्हें डरावना प्रतीत हो रहा था। कभी कभी अपनी ही परछाई पर प्रभातकिरन चौंक उठती थी।

उनकी खुशी का ठिकाना न रहा जब वे पार्क के अन्दर पहुँच गये। दूर के वृक्षों को, वे उनकी पत्तियों द्वारा नहीं बल्कि आकृतियों के सहारे पहचान रहे थे। सहसा प्रभातकिरन को वह पेड़ दिखा, जो उसकी खिड़की से मिला हुआ था। उसके पाँव जल्दी जल्दी उठने लगे, उसका हृदय जोर जोर से धड़कने लगा। पेड़ के नीचे ही पहुँच कर उसने दम लिया। उस पर चढ़ने की उसमें शक्ति न रह गई थी। उसके हाथ पाँव सुन्न से पड़े जा रहे थे।

पेड़ के नीचे पड़ी बेंच पर दोनों अन्धेरे में बैठ गए। चन्द्रमा पत्तियों के बीच से उन्हें झाँकता सा प्रतीत हो रहा था।

'आह ! चन्द्रमा अकेला है।' प्रभतकिरन ने कहा।

'परन्तु हम अकेले नहीं हैं ?' सरयू ने उसके और पास खिसकते हुए कहा।

प्रभातकिरन का सारा शरीर रोमांचित हो उठा। उसने ऊपर की ओर देखा। खिड़की खुली थी और कमरे की रोशनी निकट की डालों पर पड़ रही थी। माँ और भाई के चिर परिचित स्वर उसके कानों में पड़ रहे थे।

'जय काली' कह कर वह उठी और पेड़ की डाल पर चढ़ने लगी। सरयू ने उसे सहारा दिया। जैसे कोई मजदूर किसी नाजुक बंडल को अत्यन्त सावधानी से उठाता है वैसे ही सरयू ने उसे अपनी दोनों बाहुओं में आबद्ध करके अपने सिर के ऊपर उठाया कि वहडाल को पकड़ ले।

'तुम मेरे सच्चे साथी हो' उसने धीरे से कहा।

'और तुम मेरी ......।'

'बस, बस, बोलो मत ?' प्रभातकिरन ने डाल को मजबूती से पकड़ लिया था और उसके दोनों पैर सरयू के कन्धे पर थे जो उसे अत्यन्त दृढ़ प्रतीत हुये। शीघ्र ही वह डाल पर पहुँच गई और ऊपर जाने लगी।

उसको मदद देने, उसके पास रहने के इरादे के सरयू भी वृक्ष पर तने की ओर से चढ़ गया।

प्रभातमिरन ने खिड़की के पास पहुँच कर अन्दर कमरे में झांका। अन्धी माँ रोटियाँ बना बना कर दे रही थी और छोटा भाई उन्हें तवे पर रख रहा था। चूल्हे के धुएँ से उसकी आँखें दुःखी जा रही थीं और राख से उसके आगे के कोमल बाल सफेदी प्रकट कर रहे थे। अपनी नन्हीं-नन्हीं उङ्गलियों से वह रोटियों को

तवे से उठाता और आग में डालता और जल जाता। माँ पुचकार कर कहती—'बेटा, सम्भल कर ?'

'हाय, क्या यह खाना पकाने की उम्र है ?' प्रभातकिरन का हृदय भाई की मुसीबत पर उमड़ आया। वह खिड़की के अति निकट आ गई और इशारे से उसे अपने पास बुलाया।

बहन को देख कर वह एकाएक चिल्ला उठा—'अम्मा, दीदी।'

'सपना देखने लगा क्या रे ?' मां ने दुःख के स्वर में कहा।

अब प्रभातकिरन खिड़की के पास रुकी न रह सकी। दौड़ कर वह माँ के पास पहूँच गई और उससे लिपट कर सिसकने लगी। अन्धी माँ ने अपने दोनों हाथों से उसे टटोलना शुरू किया। उसके मस्तक पर, नाक, मुँह, गाल, आँखों पर, गले पर, कन्धों पर, पीठ पेट, छाती, बगल, तमाम अङ्गों पर हाथ फेरा। उसे यकीन हो गया कि उसकी बेटी ही है। छोटा भाई भी वहाँ पहुँच गया और दोनों के बीच में घुस कर दोनों का एक साथ प्यार प्राप्त करना चाहा।

अपने आफिस वाले कमरे में डाक्टर रामभरोस बैठे भोजन की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने आवाज लगाई—'राजन ! कुछ बना ?'

तीनों एक दूसरे को छोड़ कर सजग हो उठे। राजन ने कुछ कहने को मुँह खोला। पर प्रभातकिरन ने उसके मुँह पर हाथ रख कर उसके कान में कहा—'कहदे, लाता हूँ। यह मत बता कि दीदी आई है।'

राजन ने वैसा ही किया। प्रभातकिरन ने माँ के कान के पास मुँह लगा कर कहा—'मैं बना दूँ ?'

'बनादे।'

प्रभातकिरन हाथ पांव धोकर चूल्हे के पास पहुँच गई। केवल रोटियाँ थीं और कुछ नहीं।

'पिता जी तो बगैर दो-तीन किस्म की तरकारियों के कभी खाते नहीं थे। बात क्या है?' उसने माँ से पूछा।

माँ ने कहा—'जब से तू गई है, कोई मरीज नहीं आया। आवे भी कैसे? वे दरवाजा बन्द किये बैठे रहते हैं। तेरे सामने ही हमारा गुजर रोज की आमदनी पर होता था। अब उसका सहारा नहीं रहा। राजन घर की एक-एक चीज लेकर बाजार जाता है और बदले में कभी आटा कभी चावल लाता है। बेचारा लड़का बहुत कर रहा है।'

माँ ने राजन को अपने करीब खींच कर चूम लिया। फिर कहा—'खाने में जितना खर्च नहीं होता उतना अफीम के लिये चाहिये। आज उन्होंने अपना थर्मामीटर राजन को दिया था कि किसी दवाखाने में बेच आवे। बेचारा लड़का लेकर गया था। रास्ते में गिर कर टूट गया है। मैंने उनसे यह भेद छिपाया। कह दिया कि वह थर्मामीटर बेच कर अफीम लाया है। पर मैंने कहीं रख दी है, मिलती नहीं।'

प्रभातकिरन अपने साथ एक पोटली में थोड़ी सी अफीम भी लाई थी। उसने भाई से पोटली खोलने का इशारा किया। भाई ने पोटली खोली। खिलौने, मिठाइयाँ देख कर वह खुश हो गया। इधर कई दिनों से उसने मिठाई नहीं चखी थी। मिठाई का एक टुकड़ा उसने अपने मुँह में डाल लिया और एक टुकड़ा स्नेह से माँ के मुँह में डालने लगा।

'देखा; पगले! मेरी फ़िकर मत कर' माँ ने कहा और वह प्रभातकिरन के पास जाकर उसके कान में पूछने लगी। 'बेटी! 'तू इतने दिनों तक कहाँ रही? मैंने बहुतेरा उनसे कहा कि जाओ, देखो, पता लगाओ पर वे टस से मस न हुये। वे कहते हैं, मैं मर जाऊँगा। पर उसका मुँह न देखूंगा। पर बेटी! मैं, मैं तेरे बगैर

जी नहीं सकूँगी। तू मुझ अन्धी का सहारा थी। हाय मैं क्या करूँ? कैसे उन्हें समझाऊँ?' यह कह कर माँ सिसकने लगी।

राजन मिठाई खा चुकने पर खिलौने में उलझा; बोला—'कल इन्हें बेच कर पिता जी के लिये अफीम लाऊँगा।'

'हाय! घर की गरीबी ने इसे कितना फिकरमन्द बना दिया है?' अन्धी माता ने कहा।

प्रभातकिरन उचक कर भाई के पास गई और बोली—'भइया! तुम इन खिलौनों से खेलो! मैं पिता जी के लिये अफीम लाई हूँ।'

राजन ने पोटली में से अफीम की पुड़िया निकाली। अन्धी माता ने उसे अपने हाथों में लेकर टटोला—'बहुत है, कई दिनों को काफी होगी। उनसे बताना मत, थोड़ा-थोड़ा दूँगी।' फिर राजन को एक टुकड़ा देती हुई बोली—'ले, दे आ। कहना थर्मामीटर बेच कर लाया हूँ। दीदी का नाम मत लेना।'

'बहुत अच्छा' कह कर राजन पिता के कमरे में पहुँचा—'यह लीजिये अफीम! थर्मामीटर बेच कर लाया हूँ।'

'ला बेटा!' यह कह कर उन्होंने अफीम खाकर बहुत बड़े सुख का अनुभव किया। फिर उन्हें भोजन की चिन्ता न रही।

इधर प्रभातकिरन ने खिड़की से झांक कर सरयू से कहा—"थोड़े से आलू ला दो। पैसे हैं?"

सरयू बन्दरों की भांति पेड़ पर छलाँगे मारता अँधेरे में गायब हो गया।

अन्धी माँ ने कहा—'वे भी आये हैं? हाय! उन्होंने मुझे देख लिया होगा? तूने बताया क्यों नहीं।'

प्रभातकिरन कुछ न बोली। उसने मन ही मन सोचा—'अफ! माँ भी समझती है कि मैंने किसी से शादी कर ली?' वह कुछ कहने ही वाली थी कि माँ ने फिर पूछा 'वे कौन हैं? तुझे पाल-पोस सकेंगे? बेटी, मैं नाराज नहीं हूँ। अच्छा हुआ तू निकल गई। इस

भाड़ से जो निकल जाय वही अच्छा ! पिता की मर्जी पर होता तो तेरा व्याह कभी न करते । वे तो घर का नौकर बना कर तुझे रखना चाहते थे ।'

प्रभातकिरन कुछ बोली नहीं । मां ने उसके मुँह पर हाथ फेरा । बड़े बड़े आँसू गालों पर ढुलक रहे थे ।

'अरे ! तू रो रही है ? तुझे क्या दुःख है ? हाय ! मेरी लाड़ली ?'

'मां, मैंने शादी नहीं की !'

'सच ! और यह आदमी कौन है ?'

'राह चलते इनसे भेंट हो गई है । मुझे इन्होंने अपने घर में टिका लिया है ।'

'इनसे शादी क्यों नहीं कर लेती ?'

'ये संयुक्त प्रान्त के रहने वाले हैं । प्रतापगढ़ जिले के सोमवंशी राजपूत हैं । इनकी शादी देश में तय हो चुकी है ।"

'तब तू इनके साथ क्यों रहती है ? लोग क्या कहेंगे ? जमाना बड़ा खराब है ।'

''फिर कहां रहूँ मां ? तुम तो अपने घर में रहने नहीं देती हो ?'

मां को ऐसा जान पड़ा जैसे उसकी छाती में किसी ने चाकू भोंक दिया हो । सचमुच उसकी भोली बेटी क्या करे ? वह विह्वल हो उठी । बेटी को अपनी छाती से चिपटा कर बोली—'वे पिता नहीं, कसाई हैं । तू रह ! मैं तुझे छिपा कर रखूंगी । इस कमरे में वे आते भी नहीं हैं । किवाड़ अन्दर से बन्द रखूंगी । आयेंगे, तो तुझे अलमारी के पीछे छिपा दूँगी ।'

'पर क्या खाओगी । मुझे क्या खिलाओगी ?'

'बेटी ! मेरी तो बगैर खाये कई-कई रोज रहने की आदत है ।'

'मैं भी काट सकती हूँ ।'

'बस तेरे पिता जी के लिये व भाई के लिये कुछ करना होगा ?'

'क्या करोगी ?'

'उन से कहूँगी, वे सुबह शाम जैसे पहले बैठते थे, वैसे ही बैठें । कोई न कोई मरीज आयेगा ही । कुछ न कुछ दे ही जायगा ।'

इधर मां बेटी इस वार्तालाप में तल्लीन हो रही थीं । उधर सरयूप्रसाद इशारे कर रहा था, सीटी बजा रहा था । बड़ी मुश्किल से प्रभातकिरन का ध्यान उधर गया । झट उससे आलू लेकर उसने उबलने को रख दिये ।

'देखा, मां वे कितने अच्छे हैं ? आलू ले आये ?'

मां ने कुछ उत्तर न दिया । न जाने क्या क्या बिसूरने लगी ।

शीघ्र ही भोजन तैय्यार हो गया । मां बेटे थाल में लेकर डाक्टर के पास पहुँचे । डाक्टर पर अफीम का नशा सवार हो चुका था । वे आनन्द में थे । वे कल्पना कर रहे थे कि उनके सामने सूखीं रोटियाँ न आवेंगी । उनकी कल्पना सत्य निकली । थाल में स्वादिष्ट आलू भी थे ।

एक आलू मुँह में रखते हुये उन्होंने कहा—'थर्मामीटर बहुत कीमती था । अफीम भी मिला और आलू भी । कितने का बिका रे ?'

लड़का कुछ न बोला । डाक्टर रामभरोस का भी ध्यान खाने में लग गया । इधर प्रभातकिरन ने सरयू को बुला कर उसके कान में कहा—'आज रात मुझे यहीं छोड़ जाओ । कल का दिन भी यहीं काट दूँगी । कल शाम को इसी वक्त...... ।'

'बहुत अच्छा, तो मैं जाऊँ ?'

'चाहो तो रात भर तुम भी रहो, पिता जी इधर न आयेंगे । सवेरे चले जाना ?'

'नहीं तुम रहो ! मैं कल शाम को आऊँगा ।'

सरयू ने चाहा कि प्रभातकिरन को चूम ले । पर उसने सिर हटा लिया और उधर से अन्धी माता की आहट मालूम हुई ।

वह खिड़की से पेड़ पर आ गया और नीचे उतर गया ।

पांचवाँ परिच्छेद

प्रभातकिरन और उसकी अन्धी माता दोनों बड़ा रात तक
एक दूसरी के कान में फुसफुस करती रहीं। रात इस तरह दौड़ती
हुई प्रतीत हो रही थी जैसे तेज हवा के साथ उड़े जाने वाले
बादलों कीं छाया हो। घण्टे जल्दी जल्दी बज रहे थे। प्रभात-
किरन चाह रही थी कि अब सबेरा न हो। मां बेटी इसी प्रकार
लिपटी अनन्त अन्धकार में छिपी रहें! पर वह जानती थी कि
उसकी यह चाह एक स्वप्नमात्र है। प्रत्यक्ष जगत की निर्दयता उस
अन्धकारमय सुख को सीमा-बद्ध कर देगी।

महीने भर की चिन्ता और श्रम से शिथिल अन्धी मां इच्छा
रखने पर भी जगती न रह सकी। निद्रादेवी ने उसकी पलकों पर
अपना स्वप्निल लेप लगा कर उसे उस लोक में पहुँचा दिया, जहाँ
अन्धे भी देख सकते हैं, बहरे भी सुन सकते हैं' भूखे खा सकते हैं,
भिखारी सम्राट् बन सकते हैं। क्रमशः उसके गत जीवन के दृश्य
उसके सामने आने लगे। उसके सामने जीवन की वे घड़ियाँ आईं,
जब कलकत्ता की एक पार्क में डाक्टर रामभरोस से उसकी भेंट
हुई थी और प्रथम भेंट में ही उनमें प्रेम हो गया था। फिर वे दिन
आये जब डाक्टर रामभरोस उसे पञ्जाबी सिखाते और वह उन्हें
बँगला भाषा सिखाती। फिर वे दिन आये, जब प्रभात करन
उसकी गोदी में आई थी और साल भर बाद उसने उसका नाम-
करण किया था! माता पिता दोनों के जीवन में वह प्रभात की
एक सुनहली किरन सी आई थी! इसीलिये उसने बेटी का नाम
प्रभातकिरन रखा था। फिर वे दिन आये जब डाक्टर रामभरोस
डाक्टर नहीं हुये थे, किसी फर्म में बाबू थे! दस बजे खा पीकर

चले जाते थे, चार बजे लौटत थे। और मां लड़की को घर में
पाकर निहाल हो गई थी। उसका एकाकीपन दूर हो गया था।
वह उसके साथ खेलती थी, हँसती थी, गाती थी। फिर वह घटना
सामने आई, जब पच वर्षीया प्रभातकिरन ने पिता की बूट-पालिस
को क्रीम समझ कर अपने गालो में लगा लिया था। इस पर मां
बहुत हँसी थी। इस सुखद स्वप्न के समय में भी वह वैसे ही
हँस पड़ी।

प्रभातकिरन को निश्चय हो गया कि मां की आंखें लग गई
हैं और वे कोई सुखद सपना देख रहीं हैं। दुखिया को सपने में ही
सुख मिलता है, यह सोच कर उसने मा को जगाना उचित न
समझा। उसने स्वयं भी सोने की चेष्टा की। पर उसकी आंखों
में नींद नहीं थी। उसका हृदय तूफानी समुद्र बना हुआ था और
उसमें अनन्त लहरें उठ रही थीं!

बगल में उसका भाई पड़ा सो रहा था। प्रभातकिरन ने स्नेह
से उस पर हाथ फेरा। माता अन्धी है, पिता अफीमची हैं, और
बहन? वह सब तरह से असमर्थ है। इस बेचारे भोले बालक का
क्या होगा? उसका हृदय उमड़ आया। पिता ने उसका तिरस्कार
किया है। पर भाई ने उसे नहीं छोड़ा। बड़ा होने पर वह उसका
सहारा बनेगा। घर से उसे निर्वासित न करेगा। पर यह नन्हा
पौदा बढ़ कर वृक्ष कैसे होगा कि उसको छाया प्रदान करे? उसके
स्वास्थ्य, शिक्षा, सुख सन्तोष के लिये वह क्या करे। वह सोचने
लगी, यदि वह लड़की न होती। भाई को सुखी बनाने के लिये, माँ
का कष्ट दूर करने के लिये वह क्या नहीं करती? पर लड़की होकर
वह क्या करे? लड़की के भी तो हृदय होता है, मस्तिष्क होता है,
उसे भी परमात्मा ने हाथ पाँव दिये हैं। इच्छा का बल उसे भी
प्राप्त है। वह भी जो चाहे कर सकती है।

वह उठ कर खड़ी हो गई। कमरे में सन्नाटा था। खिड़की से

बाहर बाग की ओर उसने नजर दौड़ाई। प्रकृति अपना चन्द्रकिरनों का अञ्चल पसार अलसाई पड़ी थी। केवल इसकी आँखों में नींद नहीं थी। यदि वह बाग समुद्र होता तो खिड़की से वह उसमें कूद पड़ती और अदृश्य हो जाती। वह उस समुद्र में गोता लगाती और तली के रत्न ऊपर लाती? फिर उसने सोचा—यह कल्पना व्यर्थ है।

वह जीवन सागर का मंथन करेगी? कुछ रत्न उसमें से निकालेगी। वह अबला है जरूर, पर उसमें भी कुछ शक्ति है। पुरुष को अपने बाहुबल का, और उस बाहुबल से अर्जित धन का सहारा होता है तो स्त्री को भी अपने रूप और यौवन का गुमान होता है। परमात्मा ने उसे रूप और यौवन दिया है। ये किस दिन काम आयेंगे?

बारूद की शक्ति तभी प्रकट होती है, जब वह भड़क उठती है और स्वयं को तथा इर्द गिर्द को खाक में मिला देती है। स्त्री का रूप यौवन भी बारूद से कम नहीं। वह भी अपनी शक्ति दिखा सकता है, पर दूसरे प्रकार से। वह अपने ढहते परिवार को अपने रूप-यौवन का सहारा प्रदान करेगी। उसका कुछ हो जाय, वह अपने परिवार की रक्षा तो करेगी। वह अपमानित जीवन व्यतीत करेगी, ताकि उसके पिता को अफीम मिले, माता का पेट भरे और भाई इस योग्य हो सके कि सम्मान का जीवन व्यतीत करे। इतना तो वह कर ही सकती है, इतना जरूर करेगी। वह सेठ जी के पास जायगी। वे उसके शरीर के स्पर्श से आनन्दित होते हैं। वह उन्हें यह अवसर देगी और बदले में चाहेगी धन; इतना धन कि उसका परिवार सम्मान पूर्वक सुख से रह सके। उन्मादी-हृदय की यह लहर सहसा विवेक की चट्टान से टकरा गई। छिः वह क्या सोच रही थी। बगल के कमरे में उसके पिता की नाक बज रही थी। मानों वह जोर जोर से कह रही थी—'हमें ऐसा धन न चाहिये। हमें ऐसी अफीम न चाहिये। कुल कलंकिनी तुम जाओ, समुद्र में डूब मरो।' उसने अपमानित जीवन स्वीकार किया और पिता ने उसकी सहायता स्वीकार न की तो? तो सब व्यर्थ जायगा।

वह अपनी जगह पर आकर चुपचाप लेट रही।। बगल में पड़े भाई की ओर फिर उसका ध्यान गया। फिर उसका हृदय उन्मादी हो गया। उसके धन को पिता लेंगे कैसे नहीं, वह उनके घर में छिप कर फेंक जायगी। सैकड़ों आदमियों को वह झूठमूठ का मरीज बनाकर भेजेगी। वे उन्हें बड़ी बड़ी रकमें दे जायँगे। वे बँगले में रहने लगेंगे, नौकर चाकर रख लेंगे। माँ का कष्ट दूर होगा, भाई को शिक्षा मिलेगी और वह? भले ही संसार उसे पतिता नारी समझे, उसे शांति मिलेगी कि उसने अपने परिवार का दुःख दूर किया।

वह फिर उठ खड़ी हुई। उसके मन में आया, इसी वक्त सेठ जी के पास जाय और सब साफ साफ कह दे। यह तो सौदा है। इसमें झिझक क्या? वे सेठ हैं। उनके पास धन है। उस धन से वे अबला का रूप यौवन खरीदना चाहते हैं। वह अपना रूप यौवन उनके हाथ बेचेगी, जरूर बेचेगी। दाम लेगी। कस कर अधिक से अधिक? वह उत्तेजित हो उठी। फिर कमरे में टहलने लगी कि कब सबेरा हो और वह घर से निकले।

उसकी उत्तेजना कुछ ऐसी बढ़ी कि उसने माँ को जगाया! चुपके से उसके कान में कहा—'माँ, मैं धनी होने जा रही हूँ। बहुत धनी!'

'कैसे रे!'

'मैं सेठ रङ्गीलाल से शादी करने जा रही हूँ।'

'हूँ! वह बुड्ढा आज है, कल नहीं।'

'इससे क्या'. उसका धन तो मुझे मिलेगा। मैं धन से शादी करूँगी। सभी स्त्रियाँ धन से शादी करती हैं।'

'ऐसा मत कह ? तेरे पिता के पास क्या था ? और मैं धनी जमींदार की बेटी थी।'

'तभी तो तुम यह कष्ट पा रही हो ?'

'कष्ट का अनुभव मैंने कभी नहीं किया ! तुझे पाया, राजन को पाया ! यह बहुत बड़ा धन है !' अन्धी माँ ने बेटी को टटोलने के लिए हाथ बढ़ाया। पर उसके हाथ में कुछ न आया।

उसके कानों में फकत यह आवाज आई—'माँ मैं जा रही हूँ। ईश्वर मिलाएगा तो फिर मिलूँगी। नहीं तो सदा के लिये प्रणाम !'

'अरे पगली ! यह अर्धनिशा की बेला है और यह बम्बई शहर है।'

पर प्रभातकिरन खिड़की से पेड़ पर और पेड़ से जमीन पर पहुँच चुकी थी। बेचारी माँ वहीं खिड़की के पास बैठ कर सिसकने लगी। प्रभातकिरन वृक्ष पर से भूमि पर उतर कर तेजी से चल दी कि माँ की सिसकन उसे सुनाई न पड़े।

जब तक वह वाटिका के अन्दर रही उसके कदम तेजी से आगे की ओर बढ़ते गये। परन्तु बाग के बाहर निकलते ही वह भय-शिथिल हो उठी। बाग के बाहर कदम रखने का उसको साहस न हुआ। फिर वह पीछे की ओर लौटी। उसी पेड़ के नीचे आकर बेंच पर बैठ गई। ऊपर कमरे में अँधेरा था। अन्धी माता की कुछ आहट नहीं आ रही थी। सम्भवत: वह सो गई हो।

बैठे-बैठे वह सोचने लगी। उसकी तरफ जो लोग इतना आकर्षित होते हैं, इसका कारण एक मात्र रूप है। सेठ जी उस पर नहीं, उसके रूप पर सदय हैं। सरयूप्रसाद भी उसके रूप पर मुग्ध है। बम्बई में हजारों असहाय स्त्री पुरुष हैं। और किसी की सहायता

क्यों नहीं करते। वह निर्बल नहीं है। उसके पास रूप की शक्ति है। अबला के मोहक रूप को सभी पुरुष मस्तक झुकाते हैं और उसके इशारों पर नाचते हैं। यह बहुत बड़ा बल है जो उसे परमेश्वर से मिला है। उसने आकाश की ओर देखा और परमात्मा को धन्यवाद दिया कि उसने उसे वैसा अनूप रूप दिया है। रूप का अजेय कवच वह धारण किये हुये है। रूप उसका रक्षक है। कोई उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता ! उसमें फिर हिम्मत आई, फिर वह उठी और बाग के बाहर की ओर चल पड़ी।

फाटक पर पहुँच कर वह फिर झिझकी। फिर उसके मन में नया भय संचरित हुआ और उसे काटने को नया तर्क जाग्रत हुआ। वह अपने मन के आवेग के साथ बहजाने वाली नारी थी। मन में तर्क वितर्क करती, भयभीत होती, साहस समेटती वह बढ़ती ही गई।

रास्तों से वह बहुत वाकिफ न थी और फिर रात को। बिजली के एक खम्भे के पास खड़ी होकर वह बिसूरने लगी कि अब किधर जाय ? एक मन यह कह रहा था कि सरयूप्रसाद की कोठरी में जाकर क्षण भर को विश्राम करे और एक मन यह कह रहा था कि इधर उधर घूम फिर कर सवेरा कर दे। उस समय उसे किसी दिशा का पक्षपात नहीं था और उसके पग अनायास एक ओर को बढ़ रहे थे।

सहसा एक बेढङ्गी इमारत ने उसका ध्यान आकृष्ट किया। यह वह इमारत थी जिसमें सरयूप्रसाद रहता था। कोई आदमी सामने के फाटक की खिड़की से बाहर निकल रहा था। वह आड़ में खड़ी हो गई। उसके एक तरफ जाने के बाद वह इमारत के अन्दर घुस गई।

सरयूप्रसाद अपनी कोठरी में चटाई पर पड़ा था। लेटे लेटे जैसे वह कुछ लिख रहा हो। सिर पर बिजली की बत्ती जल रही थी।

प्रभातकिरन ने किवाड़ों की सांस से भीतर की ओर देखा और किवाड़ों को थपथपाया।

'कौन ?'

'प्रभातकिरन ?'

सरयूप्रसाद ने तत्काल उठकर द्वार खोल दिया। उसने पूछा—'खैरियत तो है ?'

'आपकी कृपा से।'

'क्यों ? पिता ने रहने नहीं दिया ?'

'मैं अपने आप चली आई ?'

'क्यों ?'

'सब बताऊँगी। टाइम क्या होगा ?'

सरयूप्रसाद ने खिड़की के बाहर दूर पर टावर की घड़ी से टाइम जानने की कोशिश की पर उसे कुछ स्पष्ट मालूम न हो सका। उसने कहा—कोई चार बजा होगा ?'

'अभी दो घण्टे रात शेष हैं ?'

'जरूर होगी ?'

प्रभातकिरन चटाई पर बैठ गई। सरयूप्रसाद दूर जा बैठा। बोला—'सो लो।'

'नहीं, इन आँखो में नींद नहीं है।'

'तो जागो।'

'और तुम भी अभी तक नहीं सोये ?'

'नहीं।'

'एक कविता लिख रहा था।'

'क्या, देखूँ ?'

सरयूप्रसाद बहुत सङ्कुचित हुआ—वह अपनी धारणा पर लज्जित हो रहा था। उसने सोचा था कि प्रभातकिरन बड़ी ही खुदगर्ज स्त्री है। उसे केवल अपनी माता, भाई व पिता की चिन्ता है। वह उसके लिये जान देता है। पर वह उसका कोई खयाल नहीं करती। इस अनुभव के सहारे वह स्त्री मात्र को स्वार्थी व खुदगर्ज अङ्कित करने की चेष्टा कर रहा था। एकाएक प्रभातकिरन को कमरे में पाकर उसकी यह धारणा निर्मूल हुई। वह अधूरी कविता को अपने ही तक रखना चाहता था। बोला—'पूरी होने पर दिखाऊँगा ? पहले तुम बताओ कि एकाएक वापस क्यों आ गई ? और फिर इस असमय में !'

प्रभातकिरन ने अपने घर का सारा कच्चा चिट्ठा कह सुनाया। सिर्फ उस पर यह न प्रकट किया कि उसका इरादा क्या है ? सरयूप्रसाद ने स्वयं कहा—'तुम उस कलाभवन की स्थापना करो न ? जिसे सेठ जी कहते हैं।'

'तुम्हारी राय है ?'

'हाँ ?'

'तो आज ही चलो, सेठ जी ये पास -'

'सवेरा तो होने दो।'

प्रभातकिरन की जान में जान आई। ईश्वर ने ही इस आदमी को उससे मिलाया है। यह निश्चय ही उसका उपकार करना चाहता है। उसका कैसा सहायक है ? जो वह चाहती है वही वह सोचता है। सरयूप्रसाद के प्रति उसके हृदय में और भी अधिक स्नेह और आदर का भाव उमड़ आया।

प्रभातकिरन उसी वक्त से अपने बनाव-शृंगार में लग गई। गिनती की दो चार साड़ियाँ थीं। उन्हीं में चुनाव करना था। उसकी वह साड़ी भी थी जिसे धारण करके वह सङ्गीत सम्मेलन में गई थी। अन्त में उसने उसी को धारण किया, चोटियों को दो नागिनों की भाँति कन्धों पर से सामने की ओर उतारा और अपने आप को आइने में देखा। उसे अपनी आकृति में दृढ़ता प्रतीत हुई। सरयूप्रसाद सवेरा होते ही सेठ जी के यहाँ मोटर

लाने चला गया था। जैसे ही मोटर का हार्न सुनाई पड़ा प्रभात किरन का हृदय धक से हो गया। रात की थकान और स्वप्नमयी वेला में उसने जो कुछ सोचा था उसे उस पर हँसी आई। परन्तु अब तो उसकी अवस्था उस कैदी की सी थी जो स्वेच्छा से जेल जाता है। एक निराशामयी चितवन और आशा भरी मुस्कान से मोटर के गिर्द एकत्रित हुये परिचित बालक बालिकाओं का अभिवादन स्वीकार करने के बाद वह चल पड़ी। सरयूप्रसाद ड्राइवर के बगल में बैठा।

मार्ग में वह सिर्फ एक बात सोच रही थी। धन है, तो सब कुछ है। धन नहीं है तो कुछ नहीं है। बम्बई शहर अपनी विशाल अट्टालिकाओं, चौड़ी सड़कों और भीड़भाड़ के रूप में उससे यही कहता प्रतीत हुआ। एक पर एक मुहल्ले उसके सामने चित्रपट के दृश्यों की भाँति खुलने लगे। अन्त में सेठ रङ्गीलाल का भव्य भवन आया। विशाल कोठी, विस्तृत वाटिका, विविध नौकर चाकर, प्राकृतिक छटा, सब मिला कर उसे सोने की लङ्का सा प्रतीत हुआ और उसमें वह ऐसे प्रविष्ट हुई जैसे सीता जी हो सकती थीं यदि वे इच्छा करतीं। सीता के रक्षक, सहारा सर्वस्व राम थे। अतएव उन्होंने उस प्रलोभन को तुच्छ समझा था पर उसका साथी कौन है? वह उसको कैसे तुच्छ समझे?

ये लोग सेठ जी के विशेष कमरे में बैठाये गये और उनके आने की सूचना उन्हें दी गई।

सेठ रङ्गीलाल ने जब से प्रभातकिरन को देखा था, तभी से बदल गये थे। जीवन पथ पर उन्हें अनेक युवतियाँ मिली थीं पर इतना अधिक उन्हें किसी ने आकृष्ट नहीं किया था। उसके बगैर उन्हें अपना सारा वैभव फीका और शरीर मृतवत प्रतीत हो रहा था। आज वह आई, तो मानों उनमें नई जान आ गई थी।

उन्होंने जूते के घिसे हुये तलों की भाँति बेढंगे होठों के बीच

से अपने नकली दाँतों की पंक्ति दिखाते हुये प्रभातकिरन का अभिवादन किया। इतना कुरूप व्यक्ति उसने कभी नहीं देखा था। पर उनके घर में लक्ष्मी का निवास था, अतएव वे आदर के योग्य प्रतीत हुये।

प्रभातकिरन ने अपने युगल कर जोड़ कर उनका अभिवादन किया और कांपते हुये स्वर में कहा—'मैं आपके पास एक विशेष कार्य से आई हूँ!'

'मेरा सौभाग्य जो आप पधारीं। आज्ञा दें।'

प्रभातकिरन ने सरयूप्रसाद की ओर देख कर विनय भरे स्वर में कहा—'भैया! अब तुम जाओ।'

'तुम्हें लिवाने कब आऊँ?'

'मैं पहुँचवा दूँगा।' सेठ जी ने कहा।

छठवां परिच्छेद

प्रभातकिरन को सिर्फ जबान डुलाने की देर थी और सब बातें उसकी मर्जी की मुताबिक हो गईं। बम्बई में नृत्य, सङ्गीत, अभिनय आदि की शिक्षा के लिये कलाभवन की स्थापना हो गई। मलाबार हिल में एक विशाल कोठी ली गई, जिसके कमरों से समुद्र का कल्लोल दिखाई ही नहीं पड़ता था, सुनाई भी पड़ता था। सेठ रङ्गीलाल इस कलाभवन के संरक्षक बने और प्रभातकिरन संस्थापिका। लाखों की सम्पत्ति अब उसके हाथ में थी। कला की उन्नति के लिये वह दोनों हाथों से धन लुटाने लगा। बम्बई ही नहीं, बम्बई के बाहर भी उसका यश फैलने लगा। उसकी प्रतिभा के साथ सेठ जी की सम्पत्ति का योग इस तरह हो गया, जैसे उमड़ते बादलों का तेज हवा का सहयोग मिल जाता है।

सेठ रङ्गीलाल का अधिकांश समय अब इसी कलाभवन में व्यतीत होने लगा। मिनटों में जो लाखों पैदा कर सकता है, उसके लिये एक ऐसी संस्था खड़ी कर देना कोई बड़ा बात न थी और फिर अपने हीं मनोरञ्जन के लिये! फिर भी प्रभातकिरन उनकी बड़ी कृतज्ञ थीं; क्योंकि उनके धन ने उसे इस प्रकार सुख और सम्मान का जीवन व्यतीत करने के योग्य बनाया था। उसके हृदय में सेठजी के प्रति उस स्नेह का भाव तो नहीं पैदा हो सका जो पत्नी का पति के प्रति होता हैं, पर हाँ, उस स्नेह का भाव अवश्य पैदा हो गया, जो माता का पुत्र के प्रति और पुत्री का पिता के प्रति होता है। जब वह उनकी ढलती अवस्था का ख्याल करती थी, तब उनकी वैसी ही सेवा करने की इच्छा करती थी, जैसी अपने छोटे भाई की करना चाहती थी। उस समय वह मातृ-स्नेह

से भर जाती थी और जब उस सहायता का विचार करती थी, जो सेठ जी से धन के रूप में उसे मिलती थी, तब सेठ जी की मूर्ति उसके सामने पिता के समान पूज्य हो उठती थी।

कितना अच्छा होता यदि सेठ जी ने उसके हृदय के इन भावों को इसी रूप में ग्रहण किया होता! पर उसका ऐसा सौभाग्य कहाँ था? वह सोचती थी कि एक न एक दिन उसे सेठ जी की आर्थिक सहायताओं का मूल्य चुकाना ही पड़ेगा। वह जानती थी कि सेठ जी बहुत बड़े व्यवसायी हैं और हर चीज को व्यापारिक दृष्टिकोण से ही देखते हैं। क्रमशः वह इस घड़ी के लिये भी तैयार हो रही थी। आखिर वह घड़ी आ ही गई।

उस दिन कलाभवन में रात को कोई बारह बजे तक नृत्य और सङ्गीय का कार्यक्रम चलता रहा था। बारह बजे सब लोग चले गये। केवल वह और सेठ जी रह गये। वह ऊपर के कमरे में खड़ी खिड़की से समुद्र का गर्जन-तर्जन देख रही थी। पूर्णमासी की रात थी। लहरें उठती, गिरतीं, फूटती, लहराती छितराती चली आ रही थीं, एक पर एक। जैसे वे चन्द्रमा को चूमने उठ रही हों और चन्द्रमा उनके अङ्कों में कूदा पड़ रहा हो। बड़ी ही मनोहर निशा थी वह! सहसा सेठ जी भी उसके पास आकर खड़े हो गये और प्रकृति की यह लीला देखने लगे।

सेठ जी का हृदय समुद्र की ही भाँति आन्दोलित था और उनका चन्द्रमा उनके अति निकट था। वे अपने को बहुत संभाल न सके। उन्होंने अपनी एक बाँह प्रभातकिर के कोमल कन्धों पर रख दी। प्रभातकिरन सिहर उठी। उसे ऐसा जान पड़ा, जैसे उसने कोई बहुत बड़ा अपराध किया हो और गरजते हुये समुद्र ने उसका अपराध घोषित कर दिया हो और अब फाँसी का फन्दा उसके गले में डाला जा रहा हो। धैर्य के साथ वह ज्यों की त्यों मूक खड़ी रही।

'प्रभातकिरन !' सेठ जी ने स्नेह भरे स्वर में कहा।

'आज्ञा', उसने काँपती हुई आवाज से उत्तर दिया।

'सामने देखो ! समुद्र और चन्द्रमा दोनों मिल कर एक हो गये हैं। और हम तुम इतना पास होते हुये भी अभी एक नहीं हो सके।'

प्रभातकिरन को फन्दा कुछ कसता जान पड़ा। वह पसीने पसीने हो गई। उसके नेत्र सजल हो उठे।

'अरे, तुम रोती हो ?' सेठ जी ने कहा।

'तुम्हें क्या चाहिये ? बोलो ! तुम्हें क्या दुःख है ? कहो ! कहो।' सेठ जी ने उसे झकझोरा।

'आप हैं तो मुझे सब सुख प्राप्त हैं।' प्रभातकिरन बोली।

'तब रोती क्यों हो ?'

'इसलिये कि मैं आपके उपकारों का बदला चुकाने में असमर्थ हूँ। आप से कभी उऋण नहीं हो सकती।'

'ऐसी बात मत करो प्रिये ! हम 'एक' हैं।' सेठ जी ने उसके कंपित अधरों पर एक चुम्बन अङ्कित कर दिया। और प्रभातकिरन को ऐसा लगा, जैसे उसके शरीर से कोई सर्प लिपट गया हो और उसके अधरों पर बार बार फन मार रहा हो।

'अगर ऐसा ही है तो मुझसे विवाह कर लो।' प्रभातकिरन ने कहा।

'विवाह !' सेठ जी ने आश्चर्य चकित होकर कहा।

'हाँ' प्रभातकिरन दृढ़ता पूर्वक बोली।

'विवाह असम्भव है। मेरी जाति के लोग स्वीकृति न देंगे। बड़ा बखेड़ा खड़ा हो जायगा ?'

प्रभातकिरन उनसे अपने आपको छुड़ा कर अलग खड़ी हो गई। बोली—'परन्तु बिना विवाह के हम आप 'एक' कैसे हो सकते हैं ?'

'हमारे हृदय जो एक हैं।'

'विवाह करना सिर्फ इस बात की घोषणा करना है कि हम एक हैं !' प्रभातकिरन बोली।

'उस दशा में मेरी बड़ी बेइज्जती होगी।' सेठ जी ने उत्तर दिया।

'और इस दशा में मेरी बड़ी बेइज्जती होगी।' प्रभातकिरन और दूर जा खड़ी हुई।

वह सोचने लगी। हाय, वह क्या करे ? वे उससे प्रेम करना चाहते हैं। बेवसी की स्थिति में वह इसके लिये भी तैयार हुई। पर नहीं, वे उसे अपनी प्रेमिका स्वीकार नहीं करना चाहते। यह तो बहुत बुरा है। वह तो कहीं की भी न रहेगी। और फिर इस प्रकार के प्रेमी तो सभी जगह मिल सकते हैं। वह भी अपना चुनाव क्यों न करे ? वह कमरे से बाहर जाने लगी।

'ठहरो, कहाँ जा रही हो ?'

'नहीं रहूँगी, आपकी छत्रछाया में, नहीं रहूँगी। जहाँ मेरा भाग्य ले जायगा, जाऊँगी।' प्रभातकिरन उत्तेजित हो उठी।

सेठ रङ्गीलाल ने दौड़ कर उसे पकड़ा। फिर उसे अपनी बाहों में आबद्ध किया और कहने लगे—'तुम चाहती हो तो विवाह भी हो जायगा। यह कोई ऐसी बात नहीं। पर तुम मेरी शुभ-चिन्तक हो। अपने आपको मेरी स्थिति में रख कर सोचो। मेरी माता, जिसकी अवस्था ८० वर्ष के लगभग है, कभी इस विवाह की स्वीकृति न देगी। मेरी पत्नी बड़ा बावेला मचावेगी। उसके भाई मेरे ही समान धनी व्यापारी हैं। वे मेरे मुकाबले में खड़े होंगे। सेठों का सारा समाज मेरे प्रतिकूल हो जायगा। फिर मेरा पुत्र है। उसकी शादी एक बहुत बड़े धनी सेठ की पुत्री से होने जा रही है। यदि मैंने तुम से शादी कर ली तो वह सम्बन्ध तो किसी प्रकार न होगा।'

प्रभातकिरन ने इन सब बातों पर गौर किया। परन्तु ये तर्क उसके गले के अन्दर न उतर सके। वह सोचने लगी, जब वे पुरुष

होकर समाज से इतना डरते हैं तब मैं तो स्त्री हूँ। मैं तो कहीं की न रहूँगी। कुछ हो, वह इस स्थिति के लिये तैयार न होगी; इस प्रकार जीने से तो आत्मघात करके मर जाना कहीं अच्छा है।

वह कुछ बोली नहीं, पर उसकी मौन मुखाकृति उसके अन्तर के भाव को स्पष्ट कर रही थी। उसकी बहुत इच्छा थी कि वह सेठ जी की पत्नी से मिले, उनकी माता के दर्शन करे, उनके पुत्र को देखे। पर सेठ जी ने उसे अपने घर के इन प्राणियों से दूर ही दूर रखा था। वे स्वयं उसे इस योग्य नहीं समझते कि अपने घर में उसे आश्रय दें, तब दूसरे भला उसे क्या न समझेंगे? फिर उनकी पत्नी उसे क्या कहेगी? बेचारी कितनी दुःखी होगी! उनकी माता को कितना कष्ट पहुँचेगा! उनका नवयुवक पुत्र क्या सोचेगा! अपने घर के प्राणियों से इस प्रकार छिपा कर उसके प्राणों के साथ वे कब तक खेल सकते हैं? कभी न कभी तो ऐसा अवसर आ ही सकता है जब यह भेद खुले और तब सेठ जी उसे उसी प्रकार त्याग दे सकते हैं जैसे उसके पिता ने उसे त्याग दिया। तब क्या होगा? अभी तो सरयूप्रसाद है, तब तो शायद वह भी उसका साथ न देगा। आज वह स्पष्ट समझ रही थी कि सेठ जी ने उसका प्रवेश अपने घर में क्यों नहीं होने दिया। ओफ! वे कितने बड़े पाखण्डी हैं! कैसे स्वार्थी हैं!

सेठ रङ्गीलाल बड़े असमंजस में पड़ गये। प्रभातकिरन पहली ही युवती नहीं थी जो उनके सम्पर्क में आई थी। ऐसी न जाने कितनी युवतियां उनके हाथों का खिलौना बन चुकी थीं और अब उनकी स्मृत से उतर चुकी थीं! उनकी धारणा थी कि चांदी की चाभी से उन कोठरियों के ताले खोले जा सकते हैं, जिन में बड़ी-बड़ी पतिव्रताएँ रहती हैं और फिर उन्हें अंगुलियों पर नचाया जा सकता है। उनके पास इतना समय कहाँ कि किसी युवती से वे घण्टों प्रेम-प्रार्थना करें? वे तो प्रत्येक पाषाण-हृदया नारी को

धन की आंच से पिघलाने के अभ्यासी रहे हैं। पर यहाँ वह प्रयाग असफल सा प्रतीत हुआ। प्रभातकिरन धन तो चाहती है, यह ठीक है, पर वह धन के साथ मानप्रतिष्ठा भी चाहती है। सांसारिक प्रेम नहीं, आदर्श प्रेम चाहती है। वह ऐसे पुरुष का प्रेम चाहती है जो उसकी रूप की ज्वाला में अपना धन-वैभव, मानप्रतिष्ठा सब भस्म कर दे। यह बहुत बड़ी मांग है। रूप का इतना बड़ा मूल्य भी हो सकता है, यह सेठ जी ने न सोचा था। फिर भी उन्होंने साहस समेट कर कहा—"मैं तुम से गुप्त विवाह करने को तैयार हूँ। ऐसी शादियां पाश्चात्य देशों में प्रचलित हैं और इसके लिये तुम जितना धन मांगो, मैं देने को तैयार हूँ।'

'इस गुप्त विवाह को कोई जानेगा?'

'बस हम तुम जानेंगे। और कोई नहीं।'

'पण्डित पुरोहित कोई नहीं?'

'कोई नहीं।'

'तब यह विवाह नहीं होगा।' प्रभातकिरन बोली।

'कौन-कौन जानें, तब यह विवाह हो सकता है?' सेठ जी ने कहा।

'कम-से-कम आपकी माता का आशीर्वाद इस विवाह को मिलना चाहिये। आपकी पत्नी की इसमें सहमति होनी चाहिये और आपके पुत्र की स्वीकृति होनी चाहिये। मैं भी अपने माता-पिता को सूचित करूँगी और उनका आशीर्वाद प्राप्त करने की चेष्टा करूँगी। पण्डित पुरोहित और कुछ घनिष्ठ मित्र आदि भी जानें तो मुझे परम सन्तोष होगा।'

सेठ रङ्गीलाल मन-ही-मन बिसूरने लगे कि यह कितनी मूर्ख लड़की है! अभी इसने दुनियां नहीं देखी है। पर इसे समझावे कौन? उन्होंने अपने ही मन को समझाया—'इसे भूल जाओ! ऐ मन के भ्रमर! इस संसार उपवन में अगणित पुष्प खिले हैं।

एक से एक; तुम और कहीं निगाह डालो। इस जङ्गली फूल को जाने दो।' पर उनका मन इस उपदेश के लिये तैयार न हुआ। वे अनेक स्त्रियों की ओर आकृष्ट हुये थे, परन्तु प्रभातकिरन उनसे सर्वथा भिन्न निकली। उन सबके बगैर वे रह सकते थे, लेकिन प्रभातकिरन के बगैर उनका वृद्ध शरीर एक मिनट भी खड़ा न रह सकेगा। खैर, उन्हें जीवन में एक ऐसी स्त्री तो मिली, जो केवल धन से नहीं खरीदी जा सकती। अपने इस अन्वेषण पर उन्हें उतनी ही प्रसन्नता हुइ, जितनी प्रसन्नता शायद कोलम्बस को अमरीका का पता लगाने पर हुई होगी।

खिड़की के पास खड़े वे बहुत देर तक समुद्र का उल्लासपूर्ण नर्तन देखते रहे। लहरें बहुत ऊँची उठ रही थीं। परन्तु वे चन्द्रमा की छायामात्र ही पकड़ पाती थीं। असली चन्द्रमा को कौन समुद्र कब चूम सका है? उन्हें भी स्त्री की छाया ही मिली है। असली स्त्री है यह प्रभातकिरन, और यह पहुँच के बाहर है।

व्यापारिक मामलों में तो सेठ जी किसी की राय नहीं लेते थे, परन्तु धार्मिक, सामाजिक, पारिवारिक और व्यक्तिगत समस्याएँ वे अपने गुरु श्री श्री १०८ त्रिकालदर्शी स्वामी अनुकूलानन्द जी महाराज की सहायता से सुलझाते थे। आज वर्षों के बाद वे स्वामी जी सेठ जी की स्मृत म आये। गुरु जी महाराज से पूछना चाहिए। शायद कोई रास्ता निकल आवे। उन्होंने कहा—'रात हो रही है, तुम सोओ! मैं भी जाता हूँ। मैं तुम्हारी बातों पर गौर करूँगा। तुम भी मेरी बातों पर विचार करना।'

'अब कब आइयेगा!' प्रभातकिरन ने उनका रास्ता रोक कर कहा।

'कल तीसरे पहर।' कह कर सेठ जी चले गये और मन ही मन सोचते गये कि यह कैसी स्त्री है कि मुझे नहीं भी चाहती और चाहती भी है। फिर उन्होंने सोचा कि शायद वे ही उसके सम-

झने में भूल कर रहे हैं। यह उनकी गलती है, जो वह हर बात में उसकी स्वीकृति की प्रतीक्षा करते हैं। स्त्री ने कब स्वीकृति दी है और पुरुष ने कब प्रतीक्षा की है? पर खैर, वह स्वामी जी से बात करेंगे। स्वामी जी की राय से कोई न कोई रास्ता अवश्य ही निकल आयेगा। उनको जो कुछ दान दक्षिणा दी गई है, सब ब्याज सहित वसूल हो जायगी।

सेठ जी को कमरे से बाहर गये मुश्किल से १० मिनट हुये होंगे कि सरयूप्रसाद कमरे में दाखिल हुआ। जैसे वह यहीं कहीं खड़ा अवसर की प्रतीक्षा करता रहा हो। प्रभातकिरन की प्रेरणा से वह कलाभवन के दफ्तर का बड़ा बाबू नियुक्त हुआ था। दुबरी, घसीटा और भूरी उसकी मातहती में काम करने को तैनात हुये थे। दुबरी, जो कुछ दुबला पतला था पर तेज था, चपरासी नियुक्त हुआ था। घसीटा सुस्त था। उसकी रुचि के अनुसार काम भी उसे मिला था। वह चौकीदार बनाया गया था और भूरी के सिपुर्द शहर के अन्दर चिट्ठियाँ आदि वितरित करने का काम करता था। दिन भर के काम के बाद ये सब प्रभातकिरन के पास पहुँचते थे और उनमें आपस में अपने अपने सुख दुख की बातें होती थीं। प्रभातकिरन उन सबको बुलाने और बातें करने की सोच ही रही थी कि सरयूप्रसाद वहाँ पहुँच गया, खुद ही बिना बुलाये। यद्यपि सरयूप्रसाद को यह अधिकार प्राप्त था कि वह किसी भी समय प्रभातकिरन के पास पहुँच सकता था, पर आज उसका इस प्रकार चोर की भाँति पहुँच जाना उसे अच्छा नहीं लगा।

'कहिये कैसे पधारे?' प्रभातकिरन ने कुछ रुखाई से कहा।

सरयूप्रसाद को उसके मन का भाव ताड़ने में देर न लगी। वह बोला—'क्यों, क्या मेरे आने से आपको कुछ कष्ट पहुँचा?'

'आधी रात से ऊपर होता है। यह किसी युवती के कमरे में आने का समय है?'

'सेठ जी भी तो अभी तक यहीं थे।'

'तो क्या सरयूप्रसाद ने सब कुछ देख सुन लिया है?' प्रभातकिरन बहुत ही सङ्कुचित हुई। न भी देखा सुना हो तो भी एक दिन तो यह भेद खुलेगा ही। यह सोच कर उसने साहस के साथ कहा—'उनकी बात दूसरी है।'

सरयूप्रसाद कुछ चौंका। कुछ सोच कर बोला—'आपका आशय मेरी समझ में नहीं आया। क्या मैं समझूँ कि वे मेरी अपेक्षा आपके अधिक निकट हैं?'

'समझना ही पड़ेगा!' प्रभातकिरन ने बड़ी गम्भीरता के साथ कहा।

सरयू जैसे बौखला उठा। दाँत पीस कर बोला—'यह बुड्ढा सेठ, जिसका ठीक नहीं कि आज मरे या कल, तुम्हें मेरी अपेक्षा अधिक प्रिय है, क्यों?'

'यहाँ एक प्रकार से मैं उन्हीं के वश में हूँ।'

'तो चलो यहाँ से। कहीं भी रह कर कमा खा लेंगे। पर जहाँ रहेंगे, साथ ही रहेंगे।'

'हमारा तुम्हारा साथ अब असम्भव है।'

सरयूप्रसाद की समझ में न आया कि इस बेपरवाई का कारण क्या है। अभी कन्न तो वह किसी भी समय आ सकता था और घण्टों बातें होती थीं। आज क्या हो गया? वह सोचने लगा कि कहीं अनजाने में उससे कोई भूल तो नहीं हो गई, कोई अपराध तो नहीं बन पड़ा। वह खड़ा खड़ा स्थिति पर गौर करने लगा। उसका चेहरा उस समय अत्यन्त उदास हो उठा था। प्रभातकिरन को उस पर दया आई। उसने सोचा कि वह बहुत ज्यादती कर रही है। यह एक युवक है, जिसने उनके लिये सब कुछ सहा है और वह कितनी कृतघ्न है! उसने कहा—

भैया! तुम कितने भोले हो? सेठ जी ने हमें यहाँ आश्रय दिया है किसलिये, जानते हो?'

'जानता हूँ, वह। उदार हैं। उनके पास धन है। वे उस धन को कला की उन्नति में लगाना चाहते हैं। यह काम हमारे द्वारा हो सकता है।'

'गलत! वह मुझ से शादी करना चाहते हैं।'

'शादी? तुम से! अरे, तुम उनकी पोती सी लगती हो। मुझे तो विश्वास नहीं होता।'

'मैं सच कहती हूँ।'

'मैं यह शादी नहीं होने दूँगा। तुम मेरी हो। तुम .....।'

'प्यारे भाई, मुझे भूल जाओ।'

प्रभातकिरन की आँखों में पानी भर आया। उसे छिपाने के लिये उसने अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया। सच यह था कि वह सरयू को अपना हृदय दे चुकी थी, परन्तु वह सेठ जी के उपकारों का भी बदला चुकाना चाहती थी। और सिवाय अपने रूप के उसके पास और क्या था, जिसे वह उन्हें अर्पित करती। वह अपने मन की ग्लानि को मन में ही छिपाकर न रख सकी। वह सिसकने लगी। फिर भर्राई हुई आवाज में बोची—'तुम्हीं ने कहा था कि कलाभवन खोलो। मैं तो इसके लिये तैयार न थी।'

'मैं नहीं जानता था कि बुड्ढा ऐसा नरपिशाच है।' सरयू ने दाँत पीस कर कहा—'मैं जान बूझ कर तुम्हें इस आग में न कूदने दूँगा। यह धन की चिता है। बुड्ढा इसमें भस्म हुआ जा रहा है। तुम इससे बचो। चलो! चलो मेरे साथ! अभी चलो।'

सरयू प्रभातकिरन का हाथ पकड़ कर खींचने लगा।

'अच्छा, तुम बाहर निकलो, मैं आती हूँ।'

सरयूप्रसाद उसे छोड़ कर तुरन्त कमरे से बाहर निकल गया।

उसी समय प्रभातकिरन ने अन्दर से द्वार बन्द कर लिये। बोली—'पागल मत बनो। रात बहुत बीत चुकी है। जाओ सो रहो।'

सरयू किवाड़ों को खोलने का बहुत देर तक व्यर्थ प्रयत्न करता रहा। फिर नीचे अपने कमरे में चला आया। उसकी खाट बिछी थी। उस पर वह धम्म से गिर पड़ा जैसे उसके शरीर में प्राण ही न रह गया हो। बगल में घसीटा का कमरा था। उसमें से रोशनी आ रही थी और कुछ आवाजें भी आ रही थीं। सरयू बड़ी मुश्किल से उठ कर वहाँ तक गया।

एक फ़र्श पर दुबरी, घसीटा, भूरी तीनों बैठे थे। बीच में शराब की बोतल थी। सरयू को देखते ही घसीटा बोला—'मैंने शराब पीनी छोड़ दी है। मैं नहीं पिऊँगा।' दुबरी बोला—'मैं भी नहीं पिऊँगा।' और भूरी बोला—'सरयू भैया! देखो, ये लोग मुझे जबरदस्ती पिला रहे हैं। और मैं कब से इनकार कर रहा हूँ।' सरयू चुपचाप जाकर उनके बीच में बैठ गया और प्यालों में उड़ेल उड़ेल कर उन्हें देने लगा। खुद भी एक प्याला अपने लिये भरा और बोला—'आज पीलो। कल से मत पीना।' वे सब भी बोले—'आज, बस सिर्फ़ आज! हा! हा! हा!'

सातवाँ परिच्छेद

सेठ रङ्गीलाल भारतवर्ष के सेठों में नम्बर एक है। उनके पास कितना धन है, इसका आज तक कोई अन्दाज नहीं लगा सका।

भारतवर्ष में जितना भी विदेशी माल बिकने आता है उस सब के वे एजेन्ट कहे जा सकते हैं। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, कोलम्बो आदि में उनके बड़े बड़े मालगोदाम हैं। उन्हीं में वे सब चीजें जमा होती हैं और सारे भारतवर्ष में पहुँचाई जाती हैं। हर बड़े शहर में उनके नाम पर एक विशाल इमारत बनी है जो 'रङ्ग-महल' के नाम विख्यात है।

यह सत्य है कि सेठ रङ्गीलाल विदेशी माल बेच कर ही भारतवर्ष के सबसे धनी सेठ बने हैं, पर अपने व्यक्तिगत जीवन में वे विदेशी वस्तुओं के घोर विरोधी हैं। वे खद्दर पहनते हैं, सरकंडे की कलम से लिखते हैं और मामूली दाल शाक खाते हैं। प्रायः वे सिर्फ़ दाल पीकर रह जाते हैं, इसीलिये कितने ही इष्ट मित्र उन्हें सेठ दालपिया भी कहते हैं। वे विचित्र व्यक्ति हैं। विदेशी माल बेचते हैं और स्वदेशी के प्रचारक हैं। उनके जीवन में ये दो परस्पर विरोधी बातें क्यों हैं? इसका आज तक कोई सही उत्तर नहीं दे सका। वे भारतवर्ष के सबसे अधिक प्रशंसित और निंदित व्यक्ति हैं। यदि कुछ लोग उन्हें मक्खी के समान उपेक्षणीय समझते हैं तो कुछ ऐसे लोग भी हैं, जो रामकृष्ण की भाँति उनकी पूजा करते हैं।

इधर कई वर्षों से उनके 'एक' की बड़ी चर्चा है। बम्बई के पास समुद्र के एक छोटे से टापू में उन्होंने एक विशाल मन्दिर बनवाया है। यह अपने चौड़े मण्डप और ऊँची मीनारों के कारण दूर से

ही पहचाना जाता है। इसकी बनावट मन्दिर की सी भी है, मस्जिद की सी भी, गिरजे की सी भी और गुरुद्वारे की सी भी। मण्डप चाँदी का बना हुआ है और उस पर स्वर्ण के मोटे अक्षरों में लिखा हुआ है—'एक।'

अखिल विश्व में शायद ही कहीं कोई ऐसा मन्दिर हो। यह मन्दिर एक अमरीकन इन्जीनीयर की देख रेख में बन कर तैयार हुआ है। इसकी सारी सामग्री अमरीका से ही बन सँवर कर कटछँट कर आई है। इतना ही नहीं, जिस भूमि पर यह खड़ा है उसकी मिट्टी दूर तक खोद डाली गई है और उसमें एक खास किस्म का कङ्कड़, जो अमरीका में होता है, भरा गया है और कूटा गया है, जो देखने से ऐसा जान पड़ता है, जैसे संगमरमर की एक विशाल चट्टान हो।

सेठ जी के गुरु श्री श्री १०८ त्रिकालदर्शी स्वामी अनुकूलानन्द जी महाराज इसी मन्दिर में रहते हैं। मन्दिर में चौबीसों घण्टे कीर्तन, भजन, कृष्णलीला और उपदेश आदि होते रहते हैं। प्रति दिन बम्बई से हजारों आदमी इस इस मन्दिर को देखने और कीर्तन भजन सुनने जाते हैं। सन्ध्या के कीर्तन में स्वामी अनुकूलानन्द जी भी शरीक होते हैं। उस समय बहुत ही आनन्द आता है और लोग उनके दर्शनों को गिर-गिर पड़ते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि स्वामी अनुकूलानन्द रहस्यमय व्यक्ति हैं। पर उन से भी अधिक रहस्यमय एक व्यक्ति इस मन्दिर में रहता है। वह है सेठ रङ्गीलाल का पुत्र विमलचन्द्र। वह इस मन्दिर में राजकुमार की भाँति रहता है। उसकी शिक्षा-दीक्षा आदि का सर्वथा स्वतन्त्र प्रबन्ध है। हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, विज्ञान, इतिहास की शिक्षा देने के लिये अलग अलग अध्यापक नियुक्त हैं। इन अध्यापकों के सिवाय और सेठ जी के घर के लोगों

के सिवाय कोई उससे मिल नहीं सकता; कोई उससे बात नहीं कर सकता।

बम्बई के पास के उस टापू के सिवाय जिसमें सेठ जी का यह मन्दिर स्थापित है, उसने संसार का और कोई भाग नहीं देखा। वर्तमान संसार में कहाँ क्या हो रहा है, उसे कोई ज्ञान नहीं। उसे केवल पौराणिक और ऐतहासिक काल का पता है। वर्तमान संसार की सारी बातें उससे छिपा कर रखी गई हैं और वह वर्तमान संसार से सर्वथा छिपा कर रखा गया है।

ऐसा करने में सेठ जी का उद्देश्य यह है कि उनका पुत्र वर्तमान संसार के समस्त दोषों से बचा रहे और आदर्श नर रत्न हो। सेठ जी को उससे बड़ी बड़ी आशाएँ हैं।

सेठ जी का यह पुत्र कीर्तन में शरीक होता है। पर उसके आगे पर्दा पड़ा रहता है। वह किसी को देख नहीं सकता। उससे कहा गया है कि वही वह देवता है जो आने वाले युग में 'एक' के नाम से विख्यात होगा और इस प्रकार जो कीर्तन होता है वह मानों उसी की तृप्ति के लिये होता है। एक शब्द में वह ईश्वर का अवतार कहा जाता है। उसका दर्शन सभी के लिये दुर्लभ है।

मुख्य मन्दिर में जब कीर्तन पूजन हो चुकता है तब श्री त्रिकालदर्शी स्वामी अनुकूलानन्द जी महाराज मन्दिर के उस भाग में पहुँचते हैं जहाँ सेठ जी का वह पुत्र रहता है। फिर उसकी माता और बूढ़ी दादी उसकी आरती उतारती हैं और देवता के समान उसका पूजन करती हैं। वर्ष में एक बार उसका चित्र उतारा जाता है और भक्तजनों में वितरित किया जाता है।

अपनी माता और बूढ़ी दादी के सिवाय विमलचन्द्र ने कोई और स्त्री नहीं देखी। अतएव वह बड़ी उत्सुकता से उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा है जब उसकी शादी होगी और वह एक तीसरी स्त्री के भी दर्शन करेगा। उसकी यह भावी पत्नी एक दूसरे धन-

सम्पन्न सेठ की कन्या है और उसकी शिक्षा दीक्षा भी सेठ जी की सलाह से कुछ इसी ढङ्ग की हो रही है।

श्री श्री त्रिकालदर्शी स्वामी अनुकूलानन्द का कहना है कि उनके मस्तिष्क में जो कुछ भी ज्ञान भरा है वह सब वे विमलचन्द्र के मस्तिष्क में उँडेल चुके हैं। अब सिर्फ इतना बाकी है कि संसार उसके मस्तिष्क का चमत्कार देखे। सर्वसाधारण के बीच उपस्थित होने का पहला अवसर उसके जीवन में उस दिन आएगा, जिस दिन उसका विवाह होगा। उस दिन विमलचन्द्र क्या कहेगा, इसका कई बार रिहर्सल हो चुका है।

सदा की भाँति आज जब त्रिकालदर्शी महाराज 'एक' की आरती के लिये मन्दिर के उस भाग में पहुँचे तो वे कुछ गम्भीर मुद्रा में थे। सेठ जी की पत्नी पार्वतीबाई और वृद्धा माता गङ्गाबाई वहाँ पहले ही से उपस्थित थीं। त्रिकालदर्शी जी महराज के चेहरे पर बजाय स्वाभाविक मुस्कान के यह गम्भीरता देख कर दोनों स्त्रियाँ बहुत चिन्तित हुयीं। पार्वतीबाई ने पूछा—'महाराज किस चिन्ता में हैं?' गङ्गाबाई ने पूछा—आज आपको रङ्गीलाल ने बुलाया था। वह कुशल से तो है? इधर बहुत दिनों से नहीं आया?'

त्रिकालदर्शी महाराज ने सेठ रङ्गीलाल की प्रशंसा में एक छोटा सा व्याख्यान दिया और इस बात पर फिर जोर दिया कि वे साक्षात भगवान कृष्ण के अवतार हैं।

गङ्गाबाई ने तत्काल अपने पुत्र और पार्वतीबाई ने अपने पति को, जो वहाँ उपस्थित नहीं था, मस्तक झुकाया और प्रणाम किया। त्रिकालदर्शी जी महाराज का दोनों स्त्रियों पर बड़ा प्रभाव था। जो वे कहते थे, वही वे करतीं थीं। जैसा वे समझाते थे, वैसा ही वे समझ जाती थीं।

क्षण भर को सब चुप रहे। फिर त्रिकालदर्शी महाराज बोले—

'सेठ रङ्गीलाल! जिस प्रभु ने अपना तेज उन्हें दिया है, वही उनकी रक्षा करे।'

'क्या कहा महाराज?' गङ्गाबाई बोली।

'क्या हमारे सेठ पर कोई……' पार्वतीबाई अपना यह वाक्य पूरा भी न कर पाई थीं कि त्रिकालदर्शी जी ने कहा—'हाँ एक विपत्ति आने वाली है। पर ऐसी नहीं कि उसका निवारण न किया जा सके।'

'कहो महाराज! कहो!! क्या विपत्ति?' गङ्गाबाई ने कहा।

त्रिकालदर्शी महाराज ने एक स्लेट पेन्सिल मँगवाया। बहुत से खाने खींचे, बहुत कुछ हिसाब लगाया। अन्त में कहा—'प्रयत्न करना हमारा धर्म है। फल देने वाला ईश्वर है।'

'महाराज कुछ कहो तो?' गङ्गाबाई ने कहा।

'मुझे कुछ ऐसा लगता है कि सेठ जी का अन्त समय करीब आ पहुँचा है।'

पार्वतीबाई चौंकी—'ऐसा न कहें महाराज?'

'जिस भविष्य को मैं देख रहा हूँ, अच्छा ही है कि वह तुम्हारी दृष्टि से ओझल है।'

'महाराज! साफ कहो, क्या बात है?' गङ्गाबाई ने कहा।

'क्या उनका कागज पूरा हो गया?' पार्वतीबाई ने पूछा।

'बेटी अपना हाथ तो दिखाओ?' त्रिकालदर्शी ने पार्वतीबाई से पूछा।

पार्वतीबाई ने अपनी हथेली त्रिकालदर्शी जी महाराज के सामने फैला दी। जैसे वह उनसे अपने पति की मङ्गलकामना की भिक्षा माँग रही हो और त्रिकालदर्शी उसकी हथेली में ऐसे उलझ गए, जैसे वह कोई बहुत बड़ा ग्रन्थ हो।

'बेटी तुम्हारा सौभाग्य अखण्ड है।' त्रिकालदर्शी ने कहा। पार्वतीबाई ने सन्तोष की सांस ली।

'परन्तु सेठ जी पर जो सङ्कट आ रहा है वह भी वैसा ही जबरदस्त जान पड़ता है। मेरी तो बुद्धि चक्कर खा रही है।'

दोनों स्त्रियाँ फिर चिन्तित हो उठीं।

'हाँ सेठ जी के जीवन का अन्त समीप दीखता है। साल भर वे जी जायँ तो समझो, बहुत है।'

'ऐं!' पार्वतीबाई की आँखों में बड़े बड़े आँसू उमड़ आये।

गङ्गाबाई त्रिकालदर्शी जी के चरण छूने लगीं।

'महाराज! बचाओ मेरे पुत्र को!'

'कोई उपाय है?' पार्वतीबाई ने पूछा।

त्रिकालदर्शी महाराज ने फिर स्लेट पर कई एक चील-बिलौटे बनाये और बहुत कुछ हिसाब लगाया। फिर कहा—'उपाय है तो परन्तु·········शायद?'

'आप बताएं तो?'

'अच्छा सुनो! यह तो तुम जानती ही हो कि सेठ रङ्गीलाल भगवान कृष्ण के अवतार हैं?'

'हाँ, महाराज!'

'उनकी आत्मा राधा के वियोग में सारे संसार का चक्कर काट रही है। क्योंकि राधा ने भी अवतार लिया है, इस संसार में। और अब वे पूर्ण युवती हो गई हैं। यदि किसी प्रकार उनका पता लगाया जा सके और उनको तैयार किया जा सके सेठ जी से विवाह करने के लिये, तब वे बच सकते हैं।'

पार्वतीबाई अवाक् रह गयीं। उन्होंने विषादभरी दृष्टि से त्रिकालदर्शी महाराज के चेहरे की ओर देखा। वे उन्हें भारी पाखण्डी प्रतीत हुये। गङ्गाबाई के मुँह से भी बोल न निकले। एक सन्नाटा सा छा गया।

विमलचन्द्र अब तक बैठा ये सारी बातें सुन रहा था। उसने

कहा—'गुरुदेव, आप तो त्रिकालदर्शी हैं। आप जान सकते हैं, राधा कहाँ हैं; कैसी हैं; तब उन्हें बुलाया जा सकता है।'

गङ्गाबाई ने कहा—'महाराज! क्या मेरी यह पुत्र बधू राधा नहीं है। आप तो कहते थे। यह भी देवी है।'

वृद्धा ने अपनी बाहें अपनी उस पुत्रवधू के कन्धे पर डाल दीं। जैसे उसे कोई उससे छीने लिये जा रहा हो।

त्रिकालदर्शी महाराज ने कहा—'इनका पद राधा से ऊँचा है। ये रुक्मिणी हैं। परन्तु सेठ जी जो कृष्ण के अवतार हैं उनकी आत्मा राधा के वियोग में तड़प रही है। वैसे ही जैसे बिना पानी के मछली तड़पती है।'

'हाय! क्या हो?' गङ्गाबाई ने कहा।

'महाराज, राधा का पता लगाइये! मैं उससे कहूँगी कि वह मेरी सौत बने। मैं उसे राजी करूँगी। जो माँगेगी, दूँगी।'

त्रिकालदर्शी महाराज ने उन दोनों स्त्रियों को, जो अपने पुत्र और पति के लिये सब कुछ करने को तैयार थीं, एक लम्बा उपदेश दिया। त्याग और पातिव्रत धर्म की महिमा बताई।

सेठ रङ्गीलाल ही उनके सब कुछ थे। उनको जीवित रखने का सवाल था। दोनों, सास पतोहू, व्यथा से व्याकुल हो उठीं। दोनों उस महिला का स्वागत करने को तैयार हो गयीं जो उनके घर में एक नई बला के समान घुस आना चाहती है, पर जिसका स्वागत होना जरूरी है क्योंकि वह उनके सेठ के लिये संजीवनी बूटी के समान है।

क्रमशः त्रिकालदर्शी महाराज ने उस स्त्री का परिचय देना शुरू किया, जो राधा का अवतार कही जा सकती है। उन्होंने अपनी आँखें जोर से गड़ा लीं जैसे उनमें मिर्च पड़ गई हो। उन्होंने अपने दोनों हाथों से अपने मस्तक को पकड़ा, जैसे वह फटा जा रहा हो। अब उनकी अन्तःदृष्टि उस युवती पर थी, जो राधा का अवतार थी

और सेठ जी से विवाह करके उन्हें दीर्घ जीवन प्रदान करा सकती
थी। उन्होंने कहना शुरू किया जैसे किसी मनुष्य के मुँह से प्रेत
बोल रहा हो—'आ ! हा ! मैंने उसे देख लिया। वह यहाँ से पाँच
मील के अन्दर के फासले पर है। जिस प्रकार हम तुम यहाँ बैठे
समुद्र की लहरें देख रहे हैं, उसी प्रकार वह भी समुद्र की लहरें
गिन रही है। उसकी आँखें लजीली पर बड़ी बड़ी हैं। मुख उसका
बिलकुल चन्द्रमा का सा है। उसके मुख पर ताजे कमल के फूल
की सी ताजगी है। उसकी मुस्कान इर्द गिर्द वैसे ही प्रसन्नता का
संचार कर रही है जैसे बसन्तऋतु के आगमन से वन उपवन खिल
उठते हैं। उसके शरीर पर कोई आभूषण नहीं है। पर तो भी वह
आभूषणों से लदी प्रतीत होती है। उसके नाखून ऐसे दिखते हैं
जैसे गुलाब की पंखुरी के बने हों। उसके केश काले घने और
चिक्कन हैं और वह उन्हें दो चोटियों में गूँथे हुये है। जान पड़ता
है जैसे दो काले नाग उसके कन्धों से झूल रहे हों। वह एक श्वेत
साड़ी पहने है जो ऐसी जान पड़ती है जैसे उसका तेज हो, जैसे
उसके रूप और मुस्कान से बुनी गई हो। परन्तु ! यह क्या ? उसका
आँखों में आँसू भर रहे हैं। शायद उसकी आत्मा भी अपने कृष्ण
के लिये व्याकुल है। तुम उसे देखना चाहती हो ?'

'हाँ, महाराज !' गङ्गाबाई ने कहा।

'इधर आओ ! आँखें बन्द करो। दोनों हाथों से अपना सिर पकड़ो ?'

गङ्गाबाई ने वैसा ही किया।

'देखा ?' त्रिकालदर्शी महाराज ने पूछा।

'हाँ, महाराज ?'

'तुम भी देखोगी ?' त्रिकालदर्शी महाराज ने पार्वतीबाई से पूछा।

'हाँ, महाराज ?'

'गुरुदेव ! मैं देखूँगा' विमलचन्द्र ने कहा।

'तुम ! तुम नहीं देख सकते ?'

'मेरी माता का ही वह एक रूप तो है ?'

'हाँ, पर तुम्हारी माता का यथार्थ रूप तुम्हारे सामने है। तुम उसी को देखो। माता के रूप में ही तुम्हें उसकी झलक दीखेगी।'

सास की हीं भाँति बहू ने भी कुछ अपनी कल्पना से कुछ त्रिकालदर्शी महाराज के प्रभाव से अपनी भावी सौत की आकृति का अनुमान किया। उस आकृति में उसे कठोरता जान पड़ी; उसकी आँखें भर आयीं। पर उस धैर्यशीला सेठानी ने अपने अञ्चल के छोर से अपनी आँखें पोंछ लीं और मुख दूसरी ओर फेर लिया ताकि कोई उसे देखे न।

इस घटना के बाद ही एक दिन प्रभातकिरन सेठ जी के इस मन्दिर में कीर्तन करने आई। उसका कीर्तन देख कर सास पतोहू दोनों चकित रह गयीं। एक साथ ही उनके मन में यह खयाल आया कि जैसे राधा यही हो। कीर्तन के बीच में ही उन्होंने दोनों की प्रशंसा की। कहा—'तुम पवित्र आत्मा हो, गलत बात कह नहीं सकती हो। राधा यही है !'

त्रिकालदर्शी महाराज के समर्थन भर की देर थी। कीर्तन समाप्त होते ही गङ्गाबाई वहाँ पर पहुँची, जहाँ प्रभातकिरन थी। उन्होंने प्रभातकिरन को अपनी दोनों बाहों में आबद्ध कर लिया, जैसे वह उनकी कोई सगी हो। प्रभातकिरन को भी आज इतने दिनों बाद जीवन में ऐसा जान पड़ा, जैसे उसका कोई अपना हो। जब उसे यह मालूम हुआ कि ये सेठ जी की माँ है—तब उसने झुक कर उनके चरण छुये। बृद्धा सेठानी इतने से ही निहाल हो गई। प्रभातकिरन को खींच कर वह अपने विश्राम सदन में ले आई और पतोहू पार्वती को बुलवा कर तुरन्त दोनों का परिचय कराया।

प्रश्न पर प्रश्न करके गङ्गाबाई ने प्रभातकिरन के बारे में बहुत कुछ जान लिया। अन्तिम प्रश्न यह था—'बेटी तेरा विवाह हुआ है ?'

'नहीं !'

इसी समय सेठ जी का पुत्र वहाँ उपस्थित हुआ। वह ऐसा चला आ रहा था जैसे नशे में हो। पैर जमीन पर नहीं पड़ रहे थे। चलते चलते लड़खड़ा जाता था। वह बोला—

'तुम मेरी भावी पत्नी हो, क्या ?'

प्रभातकिरन को यकीन हो गया कि यह व्यक्ति जरूर नशे में है। उसने उसके मुख की ओर देखा। उसमें एक अजीब भोलापन था। उस विचित्र अवस्था में भी उसे वह प्यारा लगा।

पार्वती ने पुत्र को इशारे से अपने पास बैठाया और कान में कहा—'ये राधा हैं, तुम्हारी नई माँ।'

'नहीं, नहीं ऐसा नहीं हो सकता। मेरा मन इनकी ओर खिंच रहा है। ये मेरी......।'

माँ ने बेटे के मुँह पर अपनी हथेली रख दी, 'चुप।'

विमलचन्द्र चुप हो गया। माता का वह आज्ञाकारी पुत्र था। प्रभातकिरन से उसका परिचय कराया गया। उसने उसके सिवाय और कोई स्त्री नहीं देखी है, यह उसे बताया गया।

अन्त में गङ्गाबाई ने प्रभातकिरन से प्रस्ताव किया कि यह सेठ रङ्गीलाल से शादी कर ले। प्रभातकिरन ने सोच कर उत्तर देने का वादा किया और वह रात उसने वहीं बिताई।

आठवाँ परिच्छेद

प्रभातकिरन को मनाने का काम महीनों जारी रहा। गङ्गाबाई ने उसे अपने निजी निवास में रख लिया और कहा—'बेटी तू जब तक 'हाँ' न कर देगी मैं तुझे यहाँ से जाने न दूँगी, और अन्न-जल ग्रहण न करूँगी।'

इस वृद्धा के हृदय में अपने पुत्र के लिये कितनी ममता है। प्रभातकिरन इस बात को बार बार सोचती फिर उसके जी में आता कि 'हाँ' कह दे। परन्तु तुरन्त ही वह और और ढङ्ग से भी सोचती। सेठ रङ्गीलाल का स्मरण आते ही उसका प्राण सूख जाता। उनके चेहरे पर जीवन के कोई लक्षण न थे। सिर घुटा हुआ और उस पर सफेद गांधी टोपी दूर से ऐसी दिखती, जैसे किसी मटमैली हांडी पर चूना पोत दिया गया हो। गांधी टोपी जीवन का, नयेपन का, उच्चादर्श का, शक्ति का, सेवा का प्रतीक है, इसलिये वह कल्पना करती कि वह भूल पर है। पुरुष में रूप नहीं देखना चाहिये, शक्ति देखनी चाहिये। रूप स्त्री में देखा जाता है। इस प्रकार वह बार बार अपने मन को समझाती और आँखें बन्द करके अपने मानस-पट पर सेठ जी की एक ऐसी मूर्ति अंकित करने की चेष्टा करती, जिसे वह हृदय दे सके, जिसे वह प्यार करे और उसके सामने सरयू आ खड़ा होता। वह अनिच्छापूर्वक निर्दयतापूर्वक अपने कलेजे को मसोस कर सरयू की उस प्रेममयी प्रतिमा को हटा देती और सेठ जी का फिर आह्वान करती। तब उसके सामने एक विचित्र डरावनी मूर्ति आ खड़ी होती।

आँखें भीतर धँसी हुई और बिल्कुल बन्द, नाक छोटी सी, जैसे सिर्फ दो सूराख मात्र रह गये हों, दाढ़ी मूँछ सफाचट, ऊपर

का होंठ पतला, नीचे का मोटा, दाँत बड़े बड़े, दो चार टेढ़े मेढ़े और बाहर निकले हुये, शरीर का रङ्ग जैसे सालों से खुले में पड़ा किसी सूखी लकड़ी का कुन्दा हो। शरार पर बेनाप सिला हुआ कुर्ता, कमर पर कई बार लपेटी सफेद धोती जो एक टाँग एड़ी तक ढकती थी और दूसरी टाँग सिर्फ घुटने तक। यह सब पोशाक उनके बदन पर ऐसी लगती थी जैसे मुर्दे के तन में कफन लपेटा गया हो। ऐसा मरा मरा सा, ऐसा दुबला पतला, ऐसा कुरूप और ऐसी बेढङ्गी बनावट और पोशाक का व्यक्ति संसार में शायद ही कोई दूसरा हो। प्रभातकिरन ऐसे पुरुष की पत्नी होने का विचार मन में आते ही काँप उठती और वह कहती—'नहीं माँ जी, मैं यह शादी नहीं करूँगी!'

'बेटी, तुझे किसी बात की कमी न होगी!'

'माँ जी, यदि मैं सचमुच आपकी बेटी होती, आपके के पेट से पैदा होती तो क्या आप मुझे किसी ऐसे पुरुष के साथ ब्याहतीं?'

वृद्धा कुछ उत्तर न देती। सोच में पड़ जाती। पर कुछ भी हो रङ्गीलाल उसका लड़का था। कैसा भी हो, दूसरों की कन्याओं के लिये वह श्रेष्टवर है—और फिर उसे किस बात की कमी है? वह है परमेश्वर का औतार। परमेश्वर से शादी करना भला कौन स्त्री न चाहेगी? और वृद्धा सेठानी फिर कहना शुरू करती—'बेटी, मेरी बात मान ले। तू क्या चाहती है, अपने मन की बात बता! मैं तेरी इच्छा पूर्ण करूँगी।'

'मैं चाहती हूँ, सेठ जी मेरे ही समान युवा और पूर्ण स्वस्थ हो जायें!'

'सब चीजें आदमी को फिर फिर मिलती हैं, परन्तु गई उम्र वापस नहीं आती? और कुछ इच्छा कर?'

'और मुझे कुछ न चाहिये?'

'धन जितना चाहे मिल सकता है!'

'धन मैं अपने लिये नहीं चाहती।'

'किसी के लिये चाहती है।'

'मेरे पिता गरीब हैं।'

'बेटी, मेरी बात मान। वे क्षण भर में अमीर बन सकते हैं!'

'परन्तु माँ जी। तब संसार कहेगा, उन्होंने धन के लिये अपनी पुत्री को बेच दिया।'

'तेरे कोई छोटा भाई है?'

'हाँ, उसी की मुझे चिन्ता है।'

'उसके लिये चिन्ता मत कर।'

प्रभातकिरन के सामने भाई की स्नेहमयी मूर्ति नाच गई। न जाने उस पर कैसी बीत रही होगी? माँ बाप उसके जर्जर हैं। न जाने कब संसार से चल बसें? तब राजन का क्या होगा? प्रभातकिरन की आँखें सजल हो आयीं।

जिसका भाई दाने दाने को मोहताज हो, उस बहन के जीवन में रङ्गीनी कैसी? सुख कैसा? इच्छा कैसी? वह सेठ रङ्गीलाल से ब्याह करेगी। वह अपना बलिदान करेगी।

'भाई को बुला। वह हमारे यहाँ रहेगा। उसको हम शेयर देंगे।'

प्रभातकिरन कुछ न बोली। पर न जाने कैसे उसके मुँह से एक वाक्य निकल ही गया—'कितना शेयर?'

वृद्धा सेठानी बहुत उदार थी। धन को वह मिट्टी समझती थी। उसके पति केवल चार मुट्ठी चने लेकर कलकत्ते पहुँचे थे और चार ही वर्ष में करोड़पति हो गये। फिर अपने जीवनकाल में ही उन्होंने सब गँवा दिया था। पर वृद्धा संतुष्ट थी क्योंकि उसकी गोद में रङ्गीलाल थे। उसने सोचा था—सेठ का बेटा है, यह भी सेठ होगा और सेठ रङ्गीलल बार-बार बने बिगड़े। रातोंरात वे करोड़पति हुये और रातोंरात वे पथ के भिखारी बने। पर वृद्धा सदैव एकरस

रही। पुत्र के करोड़पति बनने पर उसने हर्ष नहीं किया। और उसके दुःख में कोई सहानुभूति प्रकट करता तो वह कहती—'इसमें दुःख काहे का ? सेठों के लड़के ये खेल खेला ही करते हैं।' यही हाल रङ्गीलाल की पत्नी का था। स्वभाव के इस सांचे में ढली हुई सेठानी सौदा करने में कैसे चूकती ? उसने कहा—'बेटी, तू जितना मांगे ?'

'मैं सौ सैकड़ा मांगू तो सेठ जी मुझे दे देंगे ?'

'मांग कर देख न ?'

'और फिर हमारा उनका आपका गुज़ारा कैसे होगा ?,

'बेटी ! हम सेठ लोग, जो बीत गया उस पर नहीं पछताते। क्या होगा, यह नहीं सोचते ? क्या सामने है ? बस इतना देखते हैं। मुझे याद है, मेरे पति एक बार बहुत बीमार थे। एक पैसे की दवा उनसे नहीं खरीदी गई। मैं कहती, खरीद लो, तो ऐसा मुँह बनाते कि अच्छे ही न होंगे। परन्तु उन्हीं को दूसरे दिन जब एक करोड़ का घाटा हुआ तब वे चैतन्य हो उठे। उनका रोग जाता रहा। उन्हें खुशी हुई, जैसे उन्होंने कोई अच्छा काम किया हो।' वृद्धा ने जरा रुक कर फिर कहा—'चूँकि रङ्गीलाल को यह सौदा करना ही है इसलिये वह धन की परवाह न करेगा। तू दिल खोल कर मांग। तुझको पाने में आज वह जितना गँवावेगा, तुझको पाने के बाद उससे कहीं अधिक वह पैदा कर लेगा। मैं उसे जानती हूँ। तू फिकर मत कर।'

प्रभातकिरन ने कहा—'माता जी, सेठ लोग इस तरह जल्दी से धनी कैसे हो जाते हैं ?'

'सेठ तो आज कल बहुत से लोग अपने को कहते हैं। पर असल सेठ मारवाड़ी होते हैं। और मेरा बेटा शुद्ध मारवाड़ी है।'

'अच्छा तो मारवाड़ी इतनी शीघ्र धनी कैसे हो जाते हैं ?'

'यह दूसरा प्रसंग है, बेटी। यह तो तू जब हमारे घर में लक्ष्मी बन कर आवेगी तब स्वयं सब समझेगी। थोड़े में इतने ही से तू बहुत समझ ले कि मारवाड़ी अपने भाग्य पर भरोसा करता है और अपना ईमान कभी नहीं छोड़ता। उसकी छाती बड़ी मज़बूत होती है।'

'परन्तु मैंने सुना है, मारवाड़ी गैरमारवाड़ी में शादी ब्याह नहीं करता ?'

'बेटी, तूने ठीक सुना है।'

'तब मेरा विवाह सेठ जी से कैसे होगा ?'

निष्कपट वृद्धा ने कहा—'हमारे यहाँ पुरुषों को यह अख्तियार है, वह गैरजात की स्त्रियों को अपनी पत्नी बना सकता है। उन्हें घर देगा, धन देगा। पर हाँ बिरादरी में वे शामिल न होंगी ?'.

'तो मैं जाति बहिष्कृत सी रहूँगी ?'

'तेरी अपनी जाति भी तो है !'

'उसने भी मुझे बहिष्कृत किया तो ?'

'तो क्या ? एक नई जाति भी तो बन रही है।'

प्रभातकिरन उदास हो गई। अब वह समझी कि उसके साथ शादी को रङ्गीलाल सौदा क्यों समझता है ? वह धन से उसका शरीर और हृदय दोनों खरीदना चाहता है। उससे वास्तव में ब्याह नहीं करना चाहता। उसी क्षण उसे अपने छोटे भाई का ख्याल आया। अच्छी बात है, वह सौदा करेगी। डट कर करेगी।

'माता जी' उसने पूछा—'तो मेरे साथ सेठ जी की शादी क्या कही जायगी ? शादी या सौदा ?'

'बेटी, जिसमें तेरा मन सन्तुष्ट हो, तू वही समझ ले।'

'आप क्या समझती हैं ?'

'मैं तो ऐसी शादी को सौदा ही समझती हूँ। और इसीलिये कहती हूँ कि सङ्कोच न कर ! दिल खोल कर माँग ?'

'और मैं राधा का अवतार भी हूँ।'

'इसमें क्या सन्देह !'

'तो क्या राधाकृष्ण का ब्याह भी सौदा था ?'

'वह ब्याह तो हुआ ही नहीं। कृष्ण जी मथुरा चले गये, फिर द्वारिका गए। राधा तो विरह में ही रही !'

'और वह विरह अब भी जारी है !

'जान तो पड़ता है :'

'तब भी यह शादी सौदा है ?'

'लोकदिखावे के लिये तो हमें सौदा मानना ही पड़ेगा ?'

'हूँ ?'

गरीब की कोई इच्छा नहीं, उसका कोई धर्म नहीं, कोई मर्य्यादा नहीं। उसका जीवन बेबसी का जीवन है। पेट के गड्ढे को भरने के लिये अपने आत्मीयजनों को जीवित रखने के लिये उसको अपने तन मन प्राण सब बेच देने पड़ते हैं। हाय ! उसने गरीब के घर में जन्म क्यों लिया ! प्रभातकिरन यह सब मन ही मन सोचती और दुःखी होती।

उसका एक मन कहता कि सरयूप्रसाद से इसकी स्वीकृति लेनी चाहिये और दूसरा मन कहता कि नहीं उसे छोड़ देना चाहिये। वह कितना ही प्यारा क्यों न हो, वह उसकी पहुँच के बाहर है।

प्रभातकिरन में जहाँ अनेक गुण थे, वहाँ एक अवगुण भी था। वह बहुत ही अधिक जल्दबाज थी। जो कुछ उसके मन में आता था उस पर तुरन्त अमल करने को उद्यत हो जाती थी। यह पहला अवसर था, जब उसने इस खास प्रश्न पर इतना अधिक सोच विचार किया था। और अब उसमें अधिक सोच विचार करने की शक्ति न थी। उसने भरे हुये कण्ठ से कहा—'माता जी, मैं तैय्यार हूँ।'

बुढ़िया ने उसे तत्काल छाती से लगा लिया और उसका माथा चूमा। प्रभातकिरन उसका पैर पकड़ने चली। पर बुढ़िया ने उसे रोका—'नहीं नहीं, तू राधा है—मुझे नरक में भेजेगी क्या ?'

तत्काल ही बुढ़िया ने पार्वतीबाई को बुलवाया और यह हर्ष-समाचार सुनाया। पार्वतीबाई ने संतोष की सांस ली। सिर से एक बला टल गई। सेठ जी के प्राण निकल जाने का भय दूर हुआ। पर जहाँ उसे संतोष हुआ वहीं अब उदासी ने भी उसे आ घेरा। उसकी गृहस्थी में एक और हिस्सा बटाने वाली आ गई, उसकी सौत आ गई। सेठ जी यों भी उसका तिरस्कार करते थे, अब तो और करेंगे। वह दुःखी हुई और प्रभातकिरन को पकड़ कर रोने लगी। उसका मन किसी प्रकार गवाही न देता था कि प्रभातकिरन राधा का अवतार है और सेठ जी साक्षात कृष्ण हैं। पति की दुर्बलताएँ वह जानती थी। श्री श्री त्रिकालदर्शी महाराज से वह घबराती थी कि कहीं श्राप न दे दें। उसके हृदय में यह बात न समाती थी कि यदि इस नई राधा से शादी न करेंगे तो सेठ जी मर जायेंगे। पर अपने इस विचार को वह अपने होठों पर न आने देती थीं। कहीं ऐसा न हो कि वह इस शादी को रुकवाने की चेष्टा करे तो गुरू महाराज श्राप दे दें और कोई अनर्थ हो जाय। अब उसका एक मात्र अवलम्ब उसका पुत्र था।

सेठानी को रोते देख प्रभातकिरन भी उसे पकड़ कर रोने लगी। बोली—'बड़ी बहन, मैं दुखिया हूँ। अपनी स्थिति मैं जानती हूँ। तुम मेरे अपराधों को क्षमा करना। यह शादी मैं बेबसी में कर रही हूँ।'

सेठानी का हृदय घृणा से भर गया। धन्य है इस स्त्री को, जो दूसरे के पति को उससे छीने लेती है और माफी भी माँगती जाती है। वह इसकी जगह पर होती तो इस सम्बन्ध को कदापि स्वीकार न करती। एक समय था—जब माँ बाप किसी कारण से अपनी

लड़की किसी बूढ़े से ब्याहते थे तो लोग उनका गला काटने पर उतारू होते थे और आज लड़की स्वयं बूढ़े के हाथ बिक रही है, और दुनिया चुप है। हाय, वह कहाँ चली जाय? शर्म से, लज्जा से वह गड़ी जा रही थी। ग्लानि से वह मरी जा रही थी। पर अब तो सब कुछ सहना ही होगा। संतोष की बात केवल इतनी ही है कि परमात्मा ने उसे एक पुत्ररत्न दे रखा है। उसकी गोद सूनी नहीं है। उधर प्रभातकिरन इसलिये रो रही थी कि वह पतन के मार्ग पर कदम रख दी थी, कर्तव्य से च्युत हो रही थी। जिसको हृदय दिया था, उससे भिन्न पुरुष से शादी कर रही थी। फिर ऐसे पुरुष से शादी कर रही थी जिसके एक स्त्री पहले से मौजूद थी। यह उसकी समझ में सबसे बड़ा अपराध था। वह सोचती थी कि क्या सेठानी उसके अपराध को वास्तव में माफ कर देगी?

दोनों दुःखी थीं और इस कारण उनमें क्रमशः सहानुभूति उत्पन्न हुई। प्रभातकिरन ने सेठानी के गले में अपनी बाहें इस प्रकार डाल दीं जैसे पुत्री अपनी माता से मिलती है। सेठानी ने उसके कोमल शरीर का स्पर्श किया, अश्रु पूर्ण भोले मुख को देखा तो मातृत्व जाग्रत हो गया और उसके हृदय की संचित घृणा आँसुओं के साथ वह निकली और उसका हृदय निर्मल हो गया।

उसने कहा—'मैं तो फेल हुई। पर तुम सेठ के चञ्चल मन को बांध रखने में समर्थ होओ! भगवान् तुम्हारी रक्षा करे।' उससे और बोला न गया।

यह एक बहुत अनहोनी बात थी जो सेठ रङ्गलाल के परिवार में घटित होने जा रही थी। यह बहुत ही कट्टर घराना था। इस घराने में पुरानी धार्मिक रूढ़ियाँ पूर्णरूपेण व्याप्त थीं। विधवाओं का विवाह नहीं हो सकता था; स्त्रियों को पर्दे के बाहर नहीं निकाला जा सकता था; जाति के बाहर कौन कहे अपनी ही जाति में कुछ खास घरानों में ही शादी ब्याह हो सकते थे। अभी कल ही तो

सेठ जी ने भरी सभा में इन सब बातों पर दृढ़ रहने का संकल्प किया था और जाति वालों ने उनकी इस प्रतिज्ञा पर हर्ष-ध्वनि की थी और आज वे ही सेठ जी जाति से बाहर, इस अवस्था में अन्तर्जातीय विवाह करने जा रहे हैं। इन सब बातों को सोचती तो वृद्धा सेठानी को और पार्वती को ऐसा जान पड़ता जैसे आसमान फट पड़ेगा। परन्तु फिर भी वे सब्र करतीं। श्री श्री त्रिकालदर्शी महाराज उनके सहायक थे। वे ही तो धर्मशास्त्रों की आज्ञा और मर्यादा का कहाँ तक समर्थन मिल सकता है, यह बताएँगे और सब काम उन्हीं की राय से हो रहा था।

फिर भी एक प्रश्न था, जिसका और सास पतोहू दोनों का अत्यधिक ध्यान था। वह प्रश्न था, विमलचन्द्र का विवाह। सेठ जी का पुत्र विमलचन्द्र २० वर्ष के ऊपर हो गया था। अब तक उसका विवाह न किया गया था, क्योंकि उसकी शिक्षा-दीक्षा हो रही थी। सेठ जी उसे आदर्श नररत्न बनाना चाहते थे, अतएव उसे संसार के दोषों से सर्वथा दूर रक्खा था। परन्तु जब बालक दो ही साल का हुआ तभी उन्हें ज्ञात हो गया कि उसके पूर्ण पुरुष बनने में बड़ी बाधा है। बात यह थी कि उसे जन्म के समय ही लकवा मार गया था। उसका एक अङ्ग सर्वथा बेकाम था, दाहिनी ओर का। उसका दाहिना हाथ दाहिना पांव काम न देता था। बल देकर वह अपने दाहिने पांव पर अकेले खड़ा न हो सकता था, दाहिने हाथ से काम न ले सकता था। दाहिना कन्धा व पेट भी अविकसित ही था। सिर का भी दाहिना भाग पतला था। पर चतुर नाइयों की सहायता से बालों की काट छांट से सिर का वह दोष ढक गया था। शेष दोषों को जनता से छिपाना असम्भव था। मामूली तौर से हाथ उठाने में भी विमलचन्द्र को अपार परिश्रम करना पड़ता था। सारे शरीर की मांसपेशियाँ तन जाती थीं और चलने में पांव डगमगाते थे।

पुत्र के इन शारीरिक दोषों को सर्वसाधारण से बड़ी सावधानी से छिपाकर रक्खा गया था। कोई उससे मिलने या बातें करने नहीं पाता था। परिवार के लोगों और विश्वासी नौकरों के सिवाय और किसी को यह भेद मालूम न था।

बालक जब दो वर्ष का था और खड़ा नहीं हो सकता था, तभी से इसका उपचार प्रारम्भ हुआ था, दुनियां भर के वैद्य डाक्टर बुलाये गये, जोग तप कराये गये, पर कुछ लाभ न हुआ। पर शरीर का जैसा वह अपङ्ग था बुद्धि का वैसा ही तेज था। सोलह वर्ष की अवस्था में उसने बी० ए० पास कर लिया था। अठारवें वर्ष की अवस्था में बम्बई विश्वविद्यालय की एम० ए० की परीक्षा में वह सर्वप्रथम रहा और अब दर्शन शास्त्र में डाक्टर होने के प्रयत्न में था। सोलह वर्ष तक तो वह पिता के प्रबन्ध से होने वाली चिकित्साओं का शिकार रहा और तब तक वह मुश्किल से दो चार कदम चल सकता था। जब उसकी सोलहवीं वर्षगांठ मनाई गई तब उसने एक दिन अपनी चिकित्सा स्वयं करने की सोची। उसने अपनी इच्छा शक्ति से काम लेना और अपने रोग के सम्बन्ध में साहित्य पढ़ना शुरू किया और उन पर तजुर्बे शुरू किये। परिणाम यह हुआ कि ६ महीने बाद वह पैदल चलने में समर्थ हो गया और अपना दाहिना हाथ भी काफी आसानी से उठा सकने लगा। इस प्रकार उसमें विचार और कार्य की स्वाधीनता आई। जब वह एम० ए० पास हुआ, तब इस उपलक्ष में सेठ जी की ओर से एक बहुत बड़ी दावत दी गई। वह इस दावत के समय आगन्तुक सज्जनों से बोलना चाहता था परन्तु उसको आज्ञा नहीं दी गई। पढ़ाई लिखाई सब कुछ उसके घर पर हुई थी और इम्तहान भी उसने अकेले कमरे में बैठ कर दिया था। इधर वह बराबर विभिन्न पुरुषों और स्त्रियों से बातें करना चाहता था! मिलना चाहता था। पर इसके लिये उससे कहा गया कि यह सब शादी के बाद होगा।

अतएव अब वह अपनी शादी की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा था।

उसकी शादी भारत के दूसरे धनी सेठ रतनचन्द की सुयोग्य कन्या रतनबाई से होने वाली थी। यह कन्या अद्भुत सुन्दरी थी और सर्वगुण सम्पन्न थी। रूप में यह रति का, तो बुद्धि में साक्षात सरस्वती का अवतार थी। यह भी एम० ए० पास कर चुकी थी और इतिहास में रिसर्च कर रही थी।

सेठ रतनचन्द्र और उनकी कन्या को यह मालूम नहीं था कि विमलचन्द्र लकवा का जन्म रोगी है। यदि वे जानते तो शायद ही इस विवाह को तैयार होते। इसलिए भी यह कोशिश थी कि विमलचन्द्र की शादी तक उसका यह भेद प्रकट न होने पावे।

विमलचन्द्र की शादी में यों ही एक बड़ी बाधा थी। यह दूसरी बाधा प्रभातकिरन आ उपस्थित हुई थी। सास पतोहू दोनों को चिन्ता थी कि यदि सेठ रतनचन्द्र यह बात सुनेंगे तो अपनी पुत्री की शादी विमलचन्द्र के साथ कदापि न करेंगे। एक ही उपाय था, पहले पुत्र की शादी हो जाय, तब पिता की शादी हो।

अतएव जब प्रभाकिरन ने सेठजी के साथ शादी के लिए 'हां' कर दिया तब यह प्रश्न उन सबके सामने आया।

इस पर विचार करने के लिए सेठजी की माता गंगाबाई, पत्नी पार्वतीबाई, सेठ जी स्वयं, श्री त्रिकालदर्शी महाराज और उनके दो एक और विश्वासपात्र सम्बन्धी एक दिन श्री 'एक' जी के मंदिर के अन्तरंग-सभा भवन में एकत्र हुए। श्री त्रिकालदर्शी जी महाराज की राय में प्रभातकिरन को भी इस मंत्रणा में शरीक किया गया। कई घन्टे तक वाद विवाद के बाद यह निश्चय हुआ कि अभी गुप्त विवाह किया जाय, ताकि सेठजी के प्राणों का जोखिम टल जाय और उसके बाद प्रकट रूप से, जब पुत्र की शादी हो जाय, तब विवाह किया जाय। प्रभातकिरन इस प्रस्ताव पर किसी प्रकार

राजी न होती थी, अतएव सेठजी ने अपनी चल अचल सम्पत्ति की एक उसे वसीयत लिखकर दी। उसमें कहा गया था कि सेठजी की मृत्यु के बाद उनकी चल-अचल समस्त सम्पत्ति की स्वामिनी प्रभातकिरन होगी और प्रभातकिरन की मृत्यु के बाद सेठ जी का पुत्र विमलचन्द्र होगा। विमलचन्द्र के बाद उसके पुत्र आदि होंगे। इस प्रकार प्रभातकिरन को विश्वास हो गया था कि गुप्त विवाह उसके साथ धोखे का व्यवहार नहीं है और पुत्र की शादी के बाद सेठजी उसके साथ प्रकट रूप से भी विवाह कर लेंगे और उसे सुख शान्ति और प्रतिष्ठा का जीवन प्राप्त होगा तथा वह अपने माता, पिता, भाई की पूर्णरूप से सहायता कर सकेगी।

नवाँ परिच्छेद

डाक्टर रामभरोस अपने बाहर वाले कमरे में—अपना होमियोपैथी की दवाओं का बाक्स खोले बैठे थे। उनके बगल में दो तीन कुर्सियाँ पड़ी थीं। एक पर उनकी अन्धी पत्नी और दूसरी पर उसका पुत्र राजन बैठा था। तीनों शान्त थे। डाक्टर को इधर कई दिन से अफीम नहीं मिली थी और राजन फीस दाखिल न कर सकने के कारण स्कूल से निकाल दिया गया था।

प्रभातकिरन कभी दुवरी, कभी घसीटा या भूरी के हाथ कुछ भिजवा देती थी, उससे उनका काम चल जाता था। ये तीनों बारी बारी से मरीज बन कर आते थे और डाक्टर को कुछ दे जाते थे। इधर कई दिन से वे भी न आये थे। बम्बई शहर में, जहाँ लक्ष्मी का निवास था, जहाँ आठों प्रहर कञ्चन बरसा करता था, डाक्टर रानभरोस गरीब के गरीब रह गये थे।

जब तक प्रभातकिरन घर में रही, उनकी गृहस्थी की गाड़ी किसी प्रकार ढकिलती जा रही थी। अपनी उस सुशीला कन्या को निर्वासित करके डाक्टर आज पछता रहे थे। वे पिता थे, अपने कर्तव्य का उन्होंने कोई पालन नहीं किया था। न पुत्री को यथेष्ट शिक्षा दी थी और न उसकी शादी ब्याह के लिये विशेष प्रयत्न किया था। जब बेचारी ने स्वयं ही अपनी शिक्षा आदि के लिये प्रयत्न करना शुरू किया, तब बजाय सहायक के वे बाधक सिद्ध हुये। परन्तु ये सब बातें वे मन ही मन सोच रहे थे। पत्नी से अपने मन का यह भेद न कहते थे और पत्नी ने भी अपनी इस व्यथा को मन के अन्दर ही दबा दिया था। उसने रोना कलपना भी छोड़ दिया था। पर उसकी प्रसन्नता फिर वापस न लौटी। उसे

बाहर भीतर सर्वत्र अन्धकार दीखता था। राजन अभी बच्चा ही
था। इन सब बातों को वह न सोचता था। परन्तु माता पिता को
दुःखी देखकर वह भी दुःखीं था। इस प्रकार तीनीं मन मारे कमरे
में चुपचाप बैठे थे।

सहसा किसा के पैरों की आहट मालूम पड़ा। डाक्कर साव-
धान हा गये। समझा कोई मरीज है। उस पर अपना रोब गालिब
करने के लिये वे एक शीशी से कुछ दवा लेकर दूसरी में उडेलने
का ढोंग करने लगे, जिससे उसको मालूम हो कि डाक्टर बहुत
व्यस्थ हैं। उन्होंने तय किया था कि मरीज कमरे में आ जायगा।
दो एक मिनट खड़ा रहेगा, तब वे सिर उठाकर उसकी आर
देखेंगे। डाक्टर की पत्नी भीतर वाले ममरे में चली गई—और
राजन आलमारी खोलने लगा, जैसे दवा निकालने के लिये वह
डाक्टर की आज्ञा को प्रतीक्षा कर रहा हो।

डाक्टर को मालूम हो गया कि कोई कमरे में आकर खड़ा हो
गया है। परन्तु उन्होंने अपना सिर ऊपर नहीं उठाया। राजन ने
कनखियों से देखा—अरे! अरे यह तो प्रभातकिरन थी। वह कुछ
बोला नहीं, पर मुस्कराया। प्रभातकिरन भी मुस्कराइ। राजन ने
दौड़ कर माता को सूचना दी। डाक्टर अभी भी अपनी दवाओं
के नाटकाय मिश्रण में तल्लीन थे।

प्रभातकिरन ने काँपते हुये स्वर में पुकारा—'पिता जी।'
क्षण भर पहले डाक्टर के हृदय में पुत्री के प्रति जा सहानुभूति
के भाव उमड़ रहे थे, वे उसको देखते ही विलीन हो गये। क्राध से
उनका शरीर कांप उठा। पर वे कुछ बोले नहीं। उन्हांने पुनः अपना
सिर नीचा कर लिया। अपनी सारी मुसीबतों का कारण उन्होंने
अपनी उस पुत्री को ही समझा।

प्रभातकिरन ने हिम्मत करके कहा—पिता जीं, मैं...।

'मैं तुम्हारा मुँह नहीं देखना चाहता। मेरे घर में तुम्हारे लिये
स्थान नहीं है। जाओ।'

'मैं यहाँ रहने नहीं आई हूँ। मैं सिर्फ एक बात......।

'कहो।'

प्रभातकिरन ने राजन को अपने पास बुला कर उसे एक कागज
दिया—'पिता जी, ये ५ लाख रुपये हैं राजन के नाम। जब तक
यह नाबालिग है, आप इसके संरक्षक बनें; इसके हित में चाहे
जिस प्रकार खर्च करें।'

'क्या कहा, पांच लाख रुपये।' डाक्टर रामभरोस को जान
पड़ा जैसे वह कोई सपना देख रहे हों।

राजन ने प्रभातकिरन का इशारा पाकर वह कागज पिता के
हाथ में रख दिया। राजन के नाम वह पांच लाख की हुंडी थी।
डाक्टर रामभरोस के हस्ताक्षर से महालक्ष्मी बैंक से किसी वक्त
भुनाई जा सकती थी।

इसके पहले कि डाक्टर और कुछ कहें, प्रभातकिरन कमरे से
बाहर हो गई। दूर गली के मोड़ पर एक मोटरकार खड़ी थी।
उसमें वह बैठ गई। तब वहाँ से उसने एक लड़के को भेज कर
राजन को बुलवाया।

राजन दौड़ता हुआ उसके पास गया। प्रभातकिरन बोली—
'भैय्या, क्या तुम मेरे साथ दो तीन घण्टे के लिये चल सकते हो?'

'चलो', राजन मोटर में बहन के बगल में बैठने लगा।

'नहीं', पहले पिता जी से इजाजत ले आओ।

राजन ने दौड़ कर सारा हाल डाक्टर से कहा। उन्होंने पत्नी
को बुलाया। पांच लाख की हुंडी उसे स्पर्श करा कर कहा—
'प्रभातकिरन ने दिये हैं। अब हमारे दुःख दूर हुये। लड़की नहीं,
साक्षात लक्ष्मी है।'

माता का हृदय उमड़ आया। बोली—'तुमने रुपय ले लिये और उससे दो बात भी न की।'

डाक्टर वास्तव में बहुत ही लज्जित और दुःखी हुये। दौड़ कर वे वहाँ गये जहाँ प्रभातकिरन मोटर पर बैठी थी। वे रुआंसे से होकर बोले—'बेटी!' उनके मुँह से और शब्द न निकले। प्रभातकिरन इतने ही से गद्गद् हो गई। वह बोली—'पिता जी, दुःख न करें। ईश्वर का इसी प्रकार हमारी मदद करनी थी।'

'राजन को कहाँ ले जाओगी?'

कुछ लज्जित होकर प्रभातकिरन ने कहा—'आज मेरी शादी है। मैं चाहती हूँ राजन उसमें शामिल हो।'

अब तक बुढ़िया माँ भी वहाँ आ गई थी। वह बोली—'किसके साथ? कहाँ?'

प्रभातकिरन ने माता से सब स्पष्ट कह दिया। पति पत्नी में थोड़ी देर बातें हुई। फिर डाक्टर ने कहा—'नहीं, बेटी, तुम्हारी शादी उस बुड्ढे सेठ से मैं न होने दूँगा। मुझे ये रुपये न चाहिये। नहीं; नहीं।'

'राजन! गाड़ी मे बैठो।' प्रभातकिरन ने कहा। उसका इशारा पाते ही ड्राइवर ने मोटर चला दी। डाक्टर और उनकी पत्नी शोर मचाते ही रह गये। तमाम मुहल्ले के लोग जमा हो गये। डाक्टर ने उन सब के बीच में जोर-जोर से लेक्चर देना शुरू किया—'यह नहीं हो सकता। सेठ रङ्गीलाल हों चाहे कोई हों! मैं उनके साथ अपनी लड़की न ब्याहूँगा। उसे क्या आता है? क्या शऊर है? होगा उनके पास रुपया। उनके साथ ब्याह कर मैं अपनी लड़की का जीवन चौपट न करूँगा। अपने ऊपर बदनामी न लूँगा।'

डाक्टर रामभरोस यह कहते भी जाते थे और मन ही मन खुश भी होते जाते थे। उनके हाथ में पांच लाख रुपये जो आ गये थे। वे धनसम्पन्न प्रतिष्ठित व्यक्ति बन गये थे। सच यह था कि वे

अपने और सेठ रङ्गीलाल के इस सम्बन्ध को इस प्रकार कृत्रिम विरोध करके विज्ञापित कर रहे थे।

उसी दिन हुंडी लेकर वे महालक्ष्मी बैंक में पहुँचे। राजन के नाम हिसाब खुल गया और जरूरी खर्च के लिये डाक्टर साहब कई हजार रुपये घर ले आये। जहाँ भी गये उन्होंने इस बात की चर्चा की और सेठ रङ्गीलाल की निन्दा की। घर लौटने पर उन्होंने नाटकीय क्रोध प्रदर्शित करते हुये कहा—'वे हैं किस फेर में? मैं उनकी सारी जायदाद बिकवा लूँगा।'

सेठ रङ्गीलाल के इस विवाह की चर्चा सारे बम्बई शहर में फैल गई। लड़की के भाई को सेठ जी ने पांच लाख रुपये दिये हैं, यह भी जगह-जगह पर कहा जाने लगा। जनता में इस समाचार से बड़ी उत्तेजना फैली।

बम्बई में सेठ जी की कई मिलें थीं। उनमें एक लाख के करीब मजदूर काम करते थे। सब मिलों में हड़ताल हो गई और मजदूर सड़कों पर प्रदर्शन करते हुये सेठ जी की कोठी पर पहुँचे। पुलिस बुलाई गई, मिलिटरी आई। इतने बड़े विरोध प्रदर्शन के बाद भी सेठ रङ्गीलाल और प्रभातकिरन का ब्याह हो गया।

विवाह के बाद भी प्रभातकिरन संतुष्ट नहीं थी, यह उसके चेहरे से स्पष्ट था। पर उसके मुखमण्डल पर एक विचित्र प्रकार की शान्ति छाई हुई थी। अपने छोटे भाई के लिये, अन्धी माता के लिये, वृद्ध पिता के लिये उससे जो हो सकता था, उसने किया। यद्यपि वह समझती थी कि उसके इस कार्य की कोई प्रशंसा न करेगा, उसे स्वयं भी अपने आप पर क्रोध आ रहा था, तथापि वह संतुष्ट थी। गलत मार्ग पर चल कर ही सही, पथ-भ्रष्ट होकर ही सही, उसने अपने स्वजनों की रक्षा की थी। वह इस मार्ग का अनुसरण न करती, तो भी उसके सामने कोई और मार्ग न था। आखिर करती क्या?

कोठी के बाहर शोर गुल बढ़ रहा था। बुलन्द आवाज से लाखों की तादाद में जमा होकर मजदूर और राह चलते लोग सेठ रङ्गीलाल को कोस रहे थे। और अभिशापों की उस घनघोर वृष्टि में सेठ जी की विशाल कोठी इस प्रकार दृढ़ खड़ी थी, जैसे साधारण बरसात में खड़ी रहती है। अन्दर विशाल सुसज्जित कमरे में सेठ रङ्गीलाल, अपने गुरू श्री त्रिकालदर्शी महाराज से परामर्श कर रहे थे कि इस लोक-निन्दा से कैसे बचा जाय?

प्रभातकिरन को मालूम हो गया था कि इस सब के कारण उसके पिता हैं। हाय, वह उनके पास गई क्यों? मगर फिर वह सोचती कि छिपाने से क्या बुराई बुराई नहीं रह जाती? और फिर इस तरह की बात क्या छिप सकती है? उसने कई बार सेठ रङ्गीलाल से कहा—'प्यारे, तुम बाहर निकल कर भीड़ के सामने घोषित कर दो कि हाँ, मैंने यह शादी की है।' और मुझे इजाजत दो कि मैं स्वयं भी यह घोषित कर दूँ कि 'हाँ मैंने यह शादी की है। इसमें किसी का क्या लगता है? मेरी खुशी, चाहे जिससे शादी करूँ।'

परन्तु सेठ जी ने न तो स्वयं भीड़ का सामना करने का साहस किया और न प्रभातकिरन को ही यह आज्ञा दी। सब की राय से अन्त में श्री त्रिकालदर्शी महाराज ने उस उत्तेजित जन-समुदाय का सामना किया। उन्होंने कहा—'सेठ रङ्गीलाल को आप लोग नहीं जानते। ईश्वर ने उन्हें इतनी सम्पत्ति दी है कि वे चाहे जितनी शादियाँ कर सकते हैं, चाहे जितनी स्त्रियों को बगैर शादी के भी अपने घर में रख सकते हैं। पर नहीं वे संयमशील पुरुष हैं, आप लोगों में से जो इसे समझना चाहें, मेरे मन्दिर में पधारें, मैं उन्हें समझा दूँगा।'

इन पर लोगों ने तालियाँ बजायीं, श्री त्रिकालदर्शी महाराज को पाखण्डी कहा और उन पर पत्थर फेंके। बेचारे अपना सा मुँह लेकर चले गये। अन्त में पुलिस और मिलिटरी के जोर से भीड़ को हटवाने में सेठ जी को सफलता मिली।

मिल-मजदूरों के इस दल का नेता सरयूप्रसाद था। इस बड़ी भीड़ को लेकर सेठ रङ्गीलाल की कोठी पर वह वैसे ही चढ़ा था जैसे श्री रामचन्द्र जी ने लङ्का पर चढ़ाई की की। रावण ने सीता का अपहरण किया था और उसको सजा उसे मिली थी। यहाँ भी कुछ वैसी ही बात थी। उसकी सीता यानी प्रभातकिरन को आधुनिक रावण सेठ रङ्गीलाल ने हर लिया था। परन्तु एक फर्क था। सीता रावण के साथ स्वेच्छा से नहीं गइ थीं और प्रभातकिरन ने सेठ रङ्गीलाल को स्वेच्छा से वरा था। और फिर प्रभातकिरन को सरयूप्रसाद से बाकायदे शादी नहीं हुई थी, केवल शादी की बातचीत थी। प्रभातकिरन स्वाधीन थी, चाहे जिसके साथ विवाह करती। इस प्रकार तर्क वितर्क करता हुआ सरयू भी भीड़ के साथ चला गया था। परन्तु उसका मन बहुत दुःखी था। प्रभातकिरन ने उसके प्रेम को ठुकराया था। उसने धन के साथ शादी की। उसने पुरुष के सच्चे प्रेम की कोई कीमत न समझी। वह खुदगर्ज लड़की है। अच्छा ही हुआ जो उसने सेठ रङ्गीलाल से शादी कर ली और वह बच गया। इस प्रकार उसने अपने मन को समझाने की चेष्टा की। परन्तु फिर भी प्रभातकिरन के प्रति उसके हृदय में जो प्रेम था, वह कम न हुआ और अन्त में उसने यही निश्चय किया कि सेठ रङ्गीलाल ने धन का लोभ देकर उसकी प्रियतमा को बहकाया है। वह सेठ जी से इसका बदला लेगा जरूर!

शादी तो हो गई, परन्तु प्रभातकिरन से जो बात चाहते थे, वह सेठ रङ्गीलाल को प्राप्त न हुई। उसका शरीर ही वास्तव में उन्होंने खरीदा था। उसका हृदय वह न खरीद सके थे! वह स्त्री का हृदय और शरीर दोनों चाहते थे। परन्तु वह चूक गये। प्रभातकिरन

उनके पुत्र की, उनकी पत्नी की, उनकी वृद्धा माता की सेवा सुश्रुषा में ज्यादा रहती, परन्तु सेठ जी का दिल बहलाना उसका मुख्य कार्य है, इस बात को मानों वह समझती ही न थी। उसकी उपेक्षा सेठ जी के लिये असह्य हो उठी और उन्होंने श्री श्री त्रिकालदर्शी महाराज से अपने मन का भेद कहा। और श्री त्रिकालदर्शी महाराज ने उन्हें एक और शादी करने की सम्मति दी। यह तय हुआ कि प्रभातकिरन से सेठ जी ने जो विवाह किया है, उसे गुप्त ही रखा जाय और प्रगट विवाह वे किसी अन्य युवती से करें। पर, हाँ, पहले वे पुत्र का विवाह हो जाने दें।

डाक्टर रामभरोस ने माटुँगा में एक बढ़िया मकान किराये पर लिया और प्रभातकिरन भी वहीं आकर रहने लगी। मकान और आफिस का ठाठबाट बन जाने पर डाक्टर का दवाखाना भी कुछ जगा और मरीज दिखाई पड़ने लगे। राजन की पढ़ाई कायदे से शुरू हुई। वह स्कूल जाने लगा और घर पर भी उसको पढ़ाने के लिये मास्टर रखे गये।

एक दिन जब कि प्रभातकिरन अपने छोटे भाई के साथ घूमने जा रही थी, द्वार पर ही उसे, दो युवतियाँ मिलीं। दोनों अत्यन्त सभ्य और शिक्षित जान पड़ती थीं। बातचीत से मालूम हुआ कि वे दिल्ली के एक प्रसिद्ध कायस्थ कुल में उत्पन्न हुई हैं और एक अत्यावश्यक विषय पर प्रभातकिरन से बातें करने आई हैं। उन्होंने एकान्त में बातें करने की इच्छा प्रगट की, अतएव प्रभातकिरन ने भाई को अकेले टहलने के लिये भेज दिया और स्वयं उनके साथ एक सुसज्जित कमरे में बन्द हो गई।

उन दोनों में से एक बोली—'मेरा नाम लाजवंती है, मैंने इसी वर्ष लाहौर यूनिवर्सिटी से एम० ए० पास किया है?'

'और मैंने भी इसी वर्ष लाहौर यूनिवर्सिटी से एम० ए० की परीक्षा पास की है। मेरा नाम व्रजराजकौर है?'

फिर पहली बोली—'और मैं भूलती नहीं हूँ तो आप प्रभातकिरन हैं।'

'जी, कहिये क्या आज्ञा है?' प्रभातकिरन बोली।

पहली ने कहा—'मैंने सुना है कि आपने जिस दिन सेठ रङ्गीलाल से शादी की थी उसी दिन उन्हें तलाक दे दिया?'

'आपने किससे सुना?'

'यों ही पूछती हूँ।'

'आपका क्या मतलब है? आप यह पूछ कर क्या करेंगी?'

व्रजराजकौर बोली—'बात यह है, ये सेठ जी से शादी करने वाली हैं, अतएव जान लेना चाहती हैं कि आपने उन्हें क्यों तलाक दिया?'

प्रभातकिरन व्रजराजकौर की ओर देखती ही रह गई। उसका सुन्दर सुगठित शरीर, गौर वर्ण, बड़ी-बड़ी आँखें, वह बहुत ही उच्चवंशीय कन्या प्रतीत हो रही थी। प्रभातकिरन ने पूछा—'तब आपको इसमें क्या दिलचस्पी है?'

व्रजराजकौर ने कहा—'यदि इनकी शादी सेठ जी के साथ हो गई तो मैं इनकी सेक्रेटरी बनूँगी। बात यह है कि मैंने एक पञ्जाबी युवक से शादी की है। वह भी इसी वर्ष एम० ए० पास हुआ है। पर वह गरीब है। एक प्रकार से मैंने ही उसे खर्च देकर पढ़ाया है। पर मेरे पिता नहीं चाहते थे कि मैं उससे शादी करूँ, अतएव उन्होंने मुझे सहायता देनी बन्द कर दी है। उसे कहीं नौकरी नहीं मिल रही है अतएव मैं ही नौकरी की तलाश में हूँ। यदि लाजवंती बहन को सेठ जी से शादी हो गई, तो ये मुझे अपनी सेक्रेटरी रख लेंगी।'

प्रभातकिरन ने लाजवंती की तरफ देखा। वह एक दुबली पतली नारी थी। यों देखने में बहुत सुन्दर न थी, पर उसकी चितवन में आकर्षण था। प्रभातकिरन ने उससे पूछा—'क्यों?'

लाजवन्ती ने सिर हिलाया, जिसका अर्थ 'हाँ' था।

'तब आप मुझसे क्या चाहती हैं?' उसने लजवन्ती से पूछा।

'यही कि सेठ जी का स्वभाव कैसा है? उनके साथ मेरा शादी करना ठीक होगा या नहीं? आपको उन्होंने क्या दिया? मुझे अन्दाजन क्या देंगे?'

प्रभातकिरन जल उठी। ओफ; ये शिक्षित स्त्रियाँ धन बटोरने निकली हैं। इनका जीवन में कोई ध्येय नहीं। माँ बाप ने इन्हें क्या इसीलिये उच्च शिक्षा दी थी? क्या यही आदर्श है, जो ये समाज के सामने रखना चाहती हैं? फिर उसने सोचा, इन बेचारियों को क्यों कोसूँ? मैं स्वयं अपराधिनी नहीं हूँ?

वह बोली—'सेठ जी बहुत ही सहृदय उदार व्यक्ति हैं। आप उनसे शादी कर सकती हैं?'

'आपने उन्हें तलाक क्यों दिया?'

'मैंने उन्हें तलाक नहीं दिया, मैं अब भी उनकी पत्नी हूँ।'

'तब आप उनसे अलग क्यों रहती हैं?'

शादी का शौक मेरा और उनका दोनों का पूरा हो गया।'

'तब आपकी राय है? मैं शादी करूँ?'

'आप जैसा उचित समझें।'

थोड़ी बातचीत के बाद दोनों युवतियाँ चली गयीं और प्रभात-किरन सोचने लगी—'ओफ! यह कैसा व्यक्ति है—जो स्त्रियों के प्राणों के साथ खेल कर रहा है?'

यों तो वह सेठ जी को अत्यन्त उपेक्षा की दृष्टि से देखती थी, परन्तु आज जब एक दूसरी युपती ने उनसे विवाह करने की इच्छा प्रकट की तब उसे ऐसा जान पड़ा जैसे सेठ जी उसके जीवनप्राण, सर्वस्व हों और जैसे कोई उन्हें उससे छीन ले जाना चाहती हो। उसके सिवाय कोइ और भी युवती सेठ जी की पत्नी हो, यह उससे सहा न जायगा? वह सोचने लगी। फिर उसने सोचा, यह उसी

का कसूर है। सेठ जी ने उसके चरणों पर आत्म समर्पण कर दिया था। उनका चञ्चल मन उसके रूपजाल में अच्छी तरह फँस गया था। फिर उसने क्यों उन्हें उस पाश से निकल जाने दिया? हाय, अब क्या हो?

उसी दिन शाम को वह सेठ रङ्गीलाल के निवासस्थान पर पहुँची। मालूम हुआ कि सेठ जी अपने खास कमरे में बैठे दो स्त्रियों से बातें कर रहे हैं। जब सेठ जी इस कमरे में होते थे, तब कोई अन्दर जाने न पाता था। पर प्रभातकिरन को कौन रोकता? चपरासियों की उपेक्षा करके वह अन्दर चली गई।

कमरे में तेज रोशनी हो रही थी। बिजली के बड़े बड़े बल्ब जल रहे थे। वे दोनों स्त्रियाँ सेठ जी के दोनों तरफ बैठी उनसे घुल घुल कर बातें कर रही थीं। प्रभातकिरन ने कुछ रुखाई के साथ उनसे पूछा—'क्या तय हुआ?'

'मैं सेठ जी के साथ शादी करूँगी' लाजवंती ने कहा।

'और मैं लाजवंती की सेक्रेट्री बनूँगी' ब्रजराजकौर ने कहा।

घृणा से उसका हृदय भर गया। उसने सेठ जी को सम्बोधित करके कहा—'अच्छा हुआ, जो मैंने पहले ही सब लिखा पढ़ी करा ली थी।' और वह कमरे के बाहर निकल आई।

अब उसके कदम उसकी घर की ओर पड़ रहे थे। रूप का उसका सारा गर्व चूर हो गया था, और उसके स्वाभिमान को भारी ठेस लगी थी। वह सोचती जा रही थी, सिर्फ एक बात; अब वह कभी इस आदमी का मुँह न देखेगी।

दसवां परिच्छेद

राजपूताने में जयपुर के पास रतन महल नामक एक अच्छी बस्ती है। आधुनिक धनकुबेर सेठ रतनचन्द ने अपने रहने के लिये यहां एक महल बनवाया है। उसी के नाम पर इस बस्ती का नाम रतनमहल पड़ गया है। जिन्होंने रतनमहल देखा है, उनका कहना है कि इसके सामने ताजमहल क्या, भारतवर्ष की समस्त इमारतें फीकी लगती हैं।

यह महल सेठ जी ने कोई दस वर्ष पूर्व जर्मन इन्जीनियरों की सहायता से बनवाया था। कोई तीन मील के गिर्द में यह महल बना हुआ है। यहाँ आने के लिये जयपुर से पक्की सड़क बनी हुई है। यह सड़क महल के सामने आकर समाप्त हो जाती है। यह महल कोई एक मील लम्बे और उतने ही चौड़े तालाब के बीच में बना हुआ है। तालाब के चारों ओर एक सघन वन है, जिसमें संसार भर के वृक्ष लाकर लगाये गये हैं और सब किस्म के जीव जन्तु पाले गये हैं। किस प्रकार के वृक्षों और जीव जन्तुओं को किस प्रकार का जलवायु चाहिये, इसका भी पूरा बन्दोबस्त किया गया है। इस तीन मील के गिर्द में आधुनिक विज्ञान की सहायता से प्रकृति का पूरा नाटक देखने को मिलता है। बिजली के जोर से तालाब का पानी नीला दीखता है और एक यंत्र है, जिसके चला देने से उसमें ऐसी तरंगे उठती हैं, जैसे वह कोई तूफानी महासागर हो। तालाब के पूर्व में एक मीनार है, जिसमें एक दूसरा यंत्र लगा है। उसको चला देने से मीनार में से भाफ के बादल उठने लगते हैं और रतन महल पर छा जाते हैं, बिजली चमकती है और पानी बरसता है। दक्षिण की ओर एक तेज रोशनी का

बल्ब लगा है। उसे जब खोल दिया जाता है तब सारे रतनमहल में दिन का सा प्रकाश हो जाता है। इतना ही नहीं, ऐसे ऐसे यंत्र लगे हैं जो बात की बात में वायु मण्डल को एकाएक गर्म और सर्द बना सकते हैं। रतनमहल में जेठ के महीने में बर्फ जमती देखी जाती है और माघ में जेठ की लू चलाई जाती है।

खैर यह हुई मौसम की बात! अब महल के अन्दर आइये। महल में एक बहुत बड़ा हाल है, जिसमें नाच तमाशे व्याख्यान आदि हुआ करते हैं। इस हाल को चीनी, जापानी, रूसी, टर्किश, फ्रेंच, इङ्गलिश, अमरीकन, हबशी आदि ढङ्गों से सजाने की व्यवस्था है और जब जिस ढङ्ग से महल सजाया जाता है, वैसे ही नाच गान इसमें होते हैं और वैसा ही भोजन खाने वालों के सन्मुख आता है। इस हाल को भी इच्छानुसार गर्म और सर्द बनाया जा सकता है। अतएव इसमें बैठने वालों को कोई कष्ट नहीं होता।

महल में तीन ओर सुसज्जित कमरों की कतारें हैं, जो पहियों पर हैं और जिन्हें इच्छानुसार महल के उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम किसी तरफ ले जाया जा सकता है, ताकि उन कमरों में ठहरने वाले सेठ जी के मेहमान स्वेच्छानुसार इन प्राकृतिक दृश्य देख सकें, जिनकी कि महल के गिर्द उपवन में व्यवस्था की गई है।

एक प्रकार से यह रतनमहल सेठ रतनचन्द का विलास भवन है। सेठ रतनचन्द ने अपार सम्पत्ति पैदा की है। परन्तु उस सबको उन्होंने अपने ही आराम सुख और हाबियों' में व्यय किया है। इस महल के बाहर बसी जनता दुःख, गरीबी, बीमारी, बेकारी, महामारी, मूर्खता का शिकार है। सेठ जी ने उसके प्रति अपना कोई कर्तव्य नहीं समझा। कलकत्ता, बम्बई, अहमदाबाद आदि में उनके अनेक कल कारखाने हैं। उनमें काम करने वाले मजदूरों के लिये उन्होंने कभी कुछ नहीं किया। उनकी एक धारणा रही है कि

साधारण जन पिसने, मरने, खपने के लिये बने हैं और धनसम्पन्न जन मौज करने के लिये और संसार का सुख लूटने के लिये।

जो लोग सेठ जी का यह महल देखने आते हैं, वे जहाँ विज्ञान के आधुनिक चमत्कारों को देख कर आश्चर्यचकित होते हैं, वहां उनके मन में भारत के आधुनिक धनपतियों के प्रति विद्रोह की भावना भी जाग्रत होता है। वे सोचते हैं, इस धनसम्पन्न समाज को मिटाकर नवीन सामाजिक व्यवस्था कायम की जायगी तभी देश का कल्याण होगा। कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो यह समझते हैं कि यह वैभव उन्हें परमेश्वर ने प्रदान किया है और उसी परमेश्वर ने उन्हें गरीबी की जिन्दगी दी है। धनपतियों से इर्ष्या करना परमेश्वर को न मानना है।

कुछ भी हो, रतनमहल का एक उपयोग है ही। उसे देखकर साधारण जन बहुत कुछ जानकारी प्राप्त करते हैं और उनकी जानकारी बढ़ती है। यह सेठ जी की कृपा ही है, जो उन्होंने जनता के लिये रतनमहल के द्वार खोल दिये हैं। कम से कम इतने के लिये तो सभी उनके कृतज्ञ होते हैं।

रतनमहल में आज और ही चहल पहल है। आज वह अपनी समस्त कलाएँ क्षण क्षण पर प्रकट कर रहा है। ऋतुएँ बदलती हैं, समुद्र गर्जन करता है, कमरे मोटर लारियों की तरह गतिमान हैं। आज उसमें सेठ रङ्गीलाल की बरात आकर ठहरी है। आज वे अपने पुत्र विमलचन्द को लेकर ब्याहने आये हैं। महल के बीच का विशाल हाल भारतीय ढङ्ग से सजाया गया है। उसके कमरे की छतें इधर उधर हटा दी गई हैं, ताकि सूर्यचन्द्र और तारे भी यह शुभ विवाह देख सकें और इसके साक्षी हों।

सेठ रतनचन्द की आज बहुत बड़ी इच्छा पूर्ण हो रही है। आज उनकी पुत्री आयुष्मती रतनबाई का विवाह है। जयपुर से रतनमहल तक आने जाने वाली लारियों का तांता लगा है। सेठ

रङ्गीलाल के साथ आने वाले हजारों व्यक्तियों का स्थान स्थान पर आदर सत्कार हो रहा है। नृत्य, सङ्गीत, आतिशबाजी, रङ्ग गुलाल, और विविध पकवानों की महक से वायुमण्डल व्याप्त है।

रतनमहल जैसा आकर्षक है, वैसा ही, बल्कि उससे भी अधिक आकर्षण विमलचन्द्र में है। आज वह प्रथम बार जन साधारण के बीच में आया है। आज प्रथम बार वर और कन्या दोनों पक्ष के लोग उसे देख सकते हैं। वह 'एक' पुरुष है, जिसको सेठ रङ्गीलाल ने संसार के प्रपंचों से दूर रख कर तैयार किया है।

रतनमहल के विशाल आंगन में स्वर्ण की वेदी पर वह विवाह मण्डप में बैठा है। उसके बायीं ओर सेठ रतनचन्द की पुत्री रतनबाई बैठी है। वह राम सा दीखता है तो रतनबाई जानकी सी प्रतीत हो रही है। आज से वह पूर्ण 'एक' बनकर जनता के बीच में पदार्पण करेगा, संसार के कार्य क्षेत्र में उतरेगा। उसके दर्शनों को चारों तरफ से लोग पुरुष स्त्रियाँ सब उमड़े पड़ते हैं।

विमलचन्द्र जन्म से ही लकवा का रोगी है, यह बात किसी को मालूम नहीं है। सेठ रतनचन्द से भी यह बात छिपाई गई है। यदि उन्हें मालूम होता तो वे अपनी पुत्री का विवाह विमलचन्द के साथ करने को कदापि तैयार न होते।

इस चहल पहल आनन्दोल्लास के बीच में सेठ रङ्गीलाल बहुत चिन्तित दिखते हैं। उन्हें एक ही बात का डर है। कहीं यह भेद लोगों को विवाह से पहले न मालूम हो जाय और रङ्ग में भङ्ग हो जाय। उन्होंने भड़कीले वस्त्रों, जगमगाते मौर, और बहुमूल्य आभूषणों से विमलचन्द को इस प्रकार सजाया है, रङ्ग बिरंगे फूलों की मालाओं से उसको इस प्रकार सँवारा गया है कि कोई सूक्ष्म दृष्टि से देखने वाला ही उसके इस शारीरिक दोष को समझ सकता है।

उन्होंने और श्री श्री त्रिकालदर्शी महाराज ने विमलचन्द को

समझा रक्खा था कि वह देवता है। उसे विवाह के समय हिलना डुलना बोलना कुछ न चाहिये। इसीलिये वह मूर्तिवत बैठा है।

परन्तु वह धर्मशास्त्रों का पण्डित, निश्छल, संसार के प्रपञ्चों से दूर भोला-भाला नवयुवक बैठा बैठा यह सोच रहा है कि विवाह से पूर्व उसकी पत्नी को मालूम हो जाना चाहिये कि वह कैसा है? गांधारी ने यह जानते हुये धृतराष्ट्र को बरा था कि वे अन्धे हैं। सावित्री ने यह जानते हुये सत्यवान को बरा था कि वे एक वर्ष के अन्दर स्वर्गवासी होंगे। रतनबाई को भी मालूम होना चाहिये कि विमलचन्द्र आजन्म लकवा का रोगी है। परन्तु उससे कौन कहे? इस प्रश्न पर उसके सब गुरुजन मौन हैं। धर्म के इस सूक्ष्म तत्व को वे नहीं समझते। शायद वे नहीं जानते। पर वह ज्ञानी है। आज से वह संसार में प्रवेश कर रहा है। वह ईमानदारी से, सचाई से क्यों न अपना सांसारिक जीवन आरम्भ करे।

पण्डितों ने वेद मन्त्रोचार आरम्भ किया, स्त्रियों के मधुर कण्ठों से मङ्गलगान फूटने लगा। विविध वाद्ययन्त्र बज उठे। विमलचन्द का विवाह आरम्भ हुआ। पण्डितों ने उसका और रतनबाई का गठबन्धन किया। रतनबाई उसे साक्षात लक्ष्मी प्रतीत हो रही थी। ऐसी सुन्दर, सुकुमारी देवी-स्वरूपा नारी उसने न देखी थी। वह उस पर देखते ही मुग्ध हो गया था। और रतनबाई ने भी उस पर अपना तन मन वार दिया था। यह उसकी लजीली आँखें कह रही थीं।

विमलचन्द से अब बैठे न रहा गया। उसने खड़े होने की कोशिश की। वह यह बता देने के लिये उतावला हो उठा कि वह लकवा का रोगी है। जान पड़ा जैसे वह किसी दलदल में फँस गया हो और उसमें से निकलने का यत्न कर रहा हो। स्त्रियों में काना-फूसी हुई—'देखो! देखो! दूल्हा को क्या हो गया है?'

सेठ रङ्गीलाल श्री श्री त्रिकालदर्शी महाराज दौड़कर उसके पास आये। —'बेटा, बैठे रहो! चुपचाप?'

विमलचन्द अब खड़ा हो गया था। जान पड़ता था, रतनबाई के ऊपर लुढ़क पड़ेगा। उसने जोर से साँस खींची, उसके मुँह की आकृति बेडौल हो गई। गले की मांस पेशियां खिंच गईं उसने एक हाथ ऊपर को उठाया और डगमगा कर बोला—'नहीं, मैं चुप नहीं रहूँगा, अब समय आ गया है, जब मुझे बोलना चाहिये।'

सेठ रङ्गीलाल के मन में आया कि उसे बल पूर्वक बैठाल दें। पर वहाँ पर सेठ रतनचन्द भी पहुँच गये थे। उन्होंने कहा—'कहो, बेटा, क्या कहते हो?'

विवाह मण्डप में सन्नाटा छा गया। सेठ रङ्गीलाल अपने स्थान पर जाकर अपराधी से बैठ गये। श्री त्रिकालदर्शी महा-राज जल्दी-जल्दी माला घुमाने लगे और 'हरे राम! हरे राम' करने लगे। विमलचन्द जैसे शराब के नशे में हो, जड़ से उखड़ते हुये पेड़ की तरह इधर उधर झूम झूम कर कहने लगा—

'देवी, रतनबाई! इतने लोगों के बीच में मैं तुमको यह बताना चाहता हूँ कि मैं लकवा का रोगी हूँ। बचपन में मैं अपने आप खड़ा नहीं हो सकता था। अब तो चल फिर लेता हूँ! शायद आगे चलकर तुम्हारे सौभाग्य से मेरी हालत कुछ और सुधर जाय, पर इस समय तो मैं ऐसा ही हूँ, जैसा कि तुम देख रही हो। मैं तुम पर मुग्ध हूँ। तुम्हारे साथ विवाह करने का इच्छुक हूँ। पर मेरी चाह पूरी करना तुम्हारे हाथ में है। तुम मुझे स्वीकार करोगी, तो मैं अपना बड़ा सौभाग्य समझूँगा, पर तुम यह जान लो कि मैं कैसा हूँ। तब मुझे स्वीकार करो। सच यह है कि मैं तुम्हारी जैसी देवी के योग्य नहीं हूँ। परन्तु यदि तुम मुझसे शादी करना चाहो तो मुझे रञ्ज न होगा। सोच लो, समझ लो, अपनी स्वीकृति दो; तभी यह विवाह-यज्ञ आरम्भ होगा।'

विमलचन्द के मस्तक पर पसीना आ गया। वह और भी बहुत कुछ कहना कहना चाहता था, पर वहां भीषण कुहराम मच गया।

'मुझे धोका दिया गया है ?' सेठ रतनचन्द जोर-जोर से चिल्लाने लगे—'यह शादी नहीं होगी। नहीं होगी ?' सेठ रतनचन्द की पत्नी दहाड़ मार कर रोने लगी। और भी स्त्रियों ने उनका साथ दिया। कन्या पक्ष के लोग स्पष्ट कहने लगे—'बरात वापस जाय, शादी नहीं होगी ?' जितने मुंह उतनी बातें होने लगीं। श्री श्री त्रिकालदर्शी महाराज और जोर-जोर से माला फेरने लगे। सेठ रंगीलाल ने सिर नीचा कर लिया। ग्लानि और लज्जा से वे दबे जा रहे थे। मन ही मन वे विमलचन्द पर कुपित हो रहे थे—'बड़ा नालायक लड़का है ? हाय ! क्या हो ? हे भगवान रक्षा करो।'

रतनबाई की माता दौड़ कर अपनी पुत्री के पास पहुँची और गांठ खोलने लगी। विमलचन्द उसकी सहायता करने लगा। लोगों में उत्तेजना ऐसी फैला कि जान पड़ा कि बाराती भाग न जायेंगे तब मारे जायेंगे।

गठ-बन्धन खुलने में देर लगती देख सेठ रतनचन्द स्वयं वहाँ पहुँचे और पंडितों से कहने लगे'—बस, अब समाप्त करो। यह शादी कदापि नहीं हो सकती। कदापि नहीं ?'

परन्तु समस्त लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब लोगों ने देखा कि रतनबाई स्वयं गांठ खोलने को मना कर रही है। उसने आँखों में जल भर कर विनय भरी वाणी में सेठ रतनचन्द से कहा—'पिता जी, अब पीछे कदम हटाना ठीक नहीं है। हमारे धर्मशास्त्र के अनुसार विवाह एक धार्मिक अनुष्ठान है। यह दो शरीरों नहीं, दो आत्माओं का मिलन है ! हमारे शरीर भले ही निर्बल हों, हमारी आत्माएँ सजग हैं, सजीव हैं, सबल हैं। यह शादी होने दीजिये, आज्ञा दीजिये, आशीर्वाद दीजिये।'

'नहीं बेटी, नहीं ! यह शादी नहीं होगी। सेठ रंगीलाल ने मुझे धोखा दिया है।'

'हो सकता है, आपको धोखा दिया गया हो। परन्तु जिस पुरुष को आपने मेरा जीवन संगी जाने या अनजाने चुना है, उसने मुझे धोखा नहीं दिया। उसकी स्पष्टवादिता पर मैं मुग्ध हूँ। उसकी सचाई पर मैं प्रसन्न हूँ। उसके साहस पर मैं दंग हूँ। उसे मैं अपना हृदय दे चुकी हूँ। मुझे विश्वास है कि मेरे भाग्य से उसका लकवा अच्छा हो जायगा और अगर मेरा भाग्य अच्छा न हुआ तो स्वस्थ पुरुष को भी लकवा मार जायगा।'

'नारायण ! नारायण !!' त्रिकालदर्शी महाराज ने घोषित किया। सेठ रंगीलाल ने भी अपनी गर्दन कुछ ऊँची की।

'भाग्य ! भाग्य, बेटी कोई चीज नहीं है। हमने यह सम्पत्ति भाग्य से नहीं, पुरुषार्थ से जोड़ी है।'

'पिता जी, आप तो सदैव भाग्यवादी रहे हैं। गरीब को आप कहते रहे हैं—'यह तुम्हारा भाग्य है, इस पर सन्तोष करो। आज आपको क्या हो गया हैं ?'

'गरीब को मैं ठगता रहा हूँ, बेटी भाग्य कोई चीज नहीं है। भाग्य कोई चीज नहीं है ?'

विमचन्द फिर एक बार हिला, जैसे भूचाल आ गया हो। उसके गले की नसें फिर तन गईं। वह बोला -'सुअवसर को हम भाग्य कहते हैं। कुअवसर को दुर्भाग्य, परन्तु दोनों को उपस्थित करना हमारे हाथ में है। भद्रे ! यह सच है कि एक दिन मेरा लकवा दूर होगा। तुम कह सकती हो कि वह तुम्हारे भाग्य से दूर होगा, पर मैं कहूँगा कि वह मेरे पुरुषार्थ से दूर होगा। पर तुम अपने पिता की आज्ञा मानो।'

'और तुमने अपने पिता की आज्ञा मानी थी ?' सेठ रङ्गीलाल ने कहा।

'पिता की आज्ञा मान कर ही तो यहाँ शादी करने आया हूँ। पर हाँ, अपने असली रूप को क्यों छिपाऊँ। अगर आज मैं न बोलता और शादी हो जाती तो, मेरा मन सदैव दुःखी रहता कि मैं अपनी पत्नी को प्रिय नहीं हूँ। वह मेरी असलियत नहीं जानती थी, इसी से उसने मुझे वरा।'

'सेठ रङ्गोलाल ने मुझे धोखा दिया' सेठ रतनचन्द फिर जोर से गरजे।

'नहीं' विमलचन्द ने कहा—'आपने स्वयं अपने को धोखा दिया। आपका फर्ज था कि मेरी अच्छी तरह परीक्षा करके तब ब्याह की बात करते।'

'हाँ, तो अब परीक्षा हो गई और ब्याह नहीं होगा।'

वे फिर गाँठ खोलने में प्रयत्नशील हुये। रतनबाई ने उसे मजबूती से पकड़ लिया और उसने अश्रुपूर्ण नयनों से पिता की ओर देखा। सही या गलत, जिस पुरुष से उसका गठबन्धन हो गया था, उसको वह छोड़ना नहीं चाहती थी।

सेठ रतनचन्द ने अपनी पुत्री की सभी इच्छाएँ पूर्ण की थीं। पुत्री के सिवाय उनके कोई और सन्तान नहीं थी। वह उन्हें जी जान से प्यारी थी। अपनी समझ में उन्होंने उसके लिये योग्यतम वर खोजा था। पर विधि के इस विधान को वे क्या जानते थे। दुःख से उनका हृदय बैठ सा गया। उनके हाथ अशक्त हो गये।

'जैसी तेरी इच्छा।' कह कर वे विवाह मण्डप से बाहर चले गये। पण्डितों से कहते गये—'बेटी की बात मैंने सदैव रखी है। आज भी रखूंगा। ब्याह कराओ। परन्तु मुझसे यह ब्याह देखा न जायगा। हाय, मेरी बेटी।' वे अपने कमरे में जाकर पड़ रहे जैसे उन्हें—बुखार चढ़ आया हो। हाय! वे अपनी प्यारी पुत्री को योग्य हाथों में न सौंप सके।

—:०:—

ग्यारवां परिच्छेद

रङ्गमहल में नववधू के स्वागत के लिये बहुत जोरदार तैयारियाँ हुई थीं। मुख्य द्वार पर विविध वस्त्राभूषणों से सज्जित स्त्रियाँ मङ्गल गा रही थीं। विमलचन्द विशाल हाथी पर सोने के सिंहासन पर बैठा हुआ था। उसके दोनों तरफ चंवर चल रहे थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे कोई राजकुमार अपने महल में विवाह करके लौटा हो। यह सच भी था। वह किसी राजकुमार से कम नहीं था।

हाथी के पीछे बहुमूल्य रत्नों से जड़ी पालकी थी, जिस पर रेशम के चित्र कढ़े वस्त्रों का पर्दा पड़ा था। पालकी को पीत वस्त्र धारी कहार उठाये हुये थे, पालकी के दोनों ओर सेविकाओं का समूह था।

उसके पीछे बरातियों का लम्बा जलूस था, जिसका कहीं अन्त न मिलता था। जलूस के दोनों तरफ सेठ जी की मिलों के लाखों मजदूर थे, जो जीवन में प्रथम बार सेठ जी के यहाँ आमंत्रित थे और विमलचन्द का दर्शन कर सकते थे।

बीच-बीच में बैंड आदि विविध बाजे बज रहे थे और नर्तकियाँ नृत्य करती हुई जलूस के साथ क्रमशः बढ़ रही थीं।

पार्वती बाई के हर्ष का आज ठिकाना न था। सेठ जी उसकी उपेक्षा करते हैं, करें। उसका पुत्र तो उसका आदर करता है। सेठ जी दूसरी स्त्री को अपनी पत्नी बना सकते हैं, पर विमलचन्द दूसरी स्त्री को अपनी माता नहीं बना सकता। उसकी माता वही रहेगी, वही रहेगी, कुछ हो।

प्रभातकिरन से सेठ जी ने जब विवाह किया था, तब यह

कुछ न हुआ था। पर वह गुप्त विवाह था। प्रकट रूप से विवाह होने पर भी यह कुछ न होगा। होना भी न चाहिये। वह विवाह नहीं था। वह भी यदि सेठ की कन्या होती। पर ऐसे अवसर, सब के जीवन में नहीं आते। इस प्रकार अन्दर से दुःखी पर ऊपर से प्रसन्नता प्रकट करती हुई वह नववधू के स्वागत के लिये तैयार हुई।

धन-सम्पन्न मारवाड़ियों की स्त्रियाँ उसे घृणा की दृष्टि से देख रही थीं। उसे वे इस बात का अधिकारिणी न समझती थीं कि वह आगे बढ़ कर नव दुल्हिन का स्वागत करे। पार्वती बाई ने उससे कहा था—'बहन, तैयार होओ।' और उसने 'अच्छा' कह कर मुस्करा दिया था। फिर उसे कोई बुलावा न आया था। पार्वतीबाई विचारी स्वयं उसे बुलाना भूल गई थी। गंगा बाई ने विशेष आग्रह न दिखाया था। और इधर जो अन्य सेठानियाँ जमा हुई थीं, वे मानों उसका अपमान करने पर तुली हुई थीं। कोइ उससे बात तक न करती थीं। तिरस्कार पूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखती हुई आगे बढ़ जाती थीं।

यह अपमान, अपनी यह उपेक्षा प्रभातकिरन को असह्य प्रतीत हुई और वह अपने कमरे में वापस जाकर पलंग पर पड़ रही। वहाँ उसके नाम सेठ जी का एक पत्र मिला। वह पत्र उसी के एक पत्र के जवाब में था। प्रभातकिरन ने सेठ जी से प्रार्थना की थी कि वे उससे प्रकट रूप से विवाह करलें और संसार को विदित करदें कि वह उनकी पत्नी है। इसके बिना उसे अपना जीवन तिरस्कार पूर्ण जान पड़ता है। सेठ जी ने जो उत्तर दिया उसका सारांश यह था—'उचित यही होगा कि हमारा तुम्हारा विवाह गुप्त ही रखा जाय। वास्तविकता यह है कि तुम अपनी अन्धी माता, अफीमची पिता और असमर्थ भाई को छोड़ना नहीं चाहती हो। पत्नी का धर्म है पति के पीछे अपने को खपा देना। पर तुम पति की कोई

परवा न करके अपने परिवार की ही चिन्ता में रहती हो। तुम पति की नहीं, बाप और भाई की होकर रहना चाहती हो, रहो। स्नेह स्वाभाविक होता है। इसमें किसी का जोर नहीं, कोई जबर-दस्ती नहीं है। तुमने मुझसे नहीं, मेरे धन से विवाह किया था। वह तुम्हें मिल ही गया है। अब तुम मेरी क्यों परवा करोगी। खैर, मैं तुम्हें इजाजत देता हूँ। तुम अपने पिता के साथ रहो। मैं अब तुमसे नहीं मिलूँगा। तुमसे कोई सम्बन्ध नहीं रखूँगा। पर हाँ, जब तक तुम मेरी होकर अपने पिता के यहाँ रहोगी, तुम्हें बराबर ०००) महीना व्यय के लिये भेजता रहूँगा। मैं सोचता हूँ यह कम नहीं है। तुम्हारी जानकारी के लिये मैं यह भी बता देना चाहता हूँ कि मैं लाजवंती से विवाह करूँगा। सब तै हो गया है। वह धन के लिये विवाह नहीं कर रही है। वह मुझसे वास्तव में प्रेम करती है। मेरे व्यक्तित्व में वह अपना व्यक्तित्व मिला देने को तैयार है। मेरे लिये वह सब कुछ त्याग देने को प्रस्तुत है। जिस 'एक' को मैंने कल्पना की है' वह उसी के सहयोग से मैं प्रत्यक्ष करके संसार को दिखा सकता हूँ।'

प्रभातकिरन का यह अपमान पर अपमान था। उस समय यदि धरती फट जाती तो वह उसमें समा जाती। थोड़ी देर तक वह काठ बनी पड़ी रही। जैसे उसमें कोई प्राण ही न हो। फिर वह उठ बैठी। सेठ रङ्गीलाल के पत्र को उसने बार-बार पढ़ा। ओफ, ये चाहते हैं कि मैं अपने माँ बाप को भूल जाऊँ? ये बड़े सुन्दर हैं न? केवल धन का इनके पास बल है। स्त्री को आकर्षित करने के लिये इतना ही काफी नहीं है। फिर उसका ध्यान लाजवंती की ओर गया। महीना भर पहले लाजवंती उससे मिली थी। कितनी शैतानियत उसकी आँखों से टपक रही थी। वह धन नहीं, सेठ जी का प्रेम चाहती है। झूठ! बिल्कुल झूठ!

प्रभातकिरन जैसे पागल हो उठी। अपने ही आप वह बड़बड़ाने

लगी—'लाजवंती, तुम आदर्श की दुहाई देती हो! पर तुम्हारा कोई आदर्श नहीं है। तुम एक ऐसे पुरुष से शादी करने जा रही हो, जिसके दो स्त्रियाँ पहले से मौजूद हैं और तुम एम० ए० पास हो, सुशिक्षिता हो। पर खैर, तुम्हें क्यों कुछ कहें। मैं स्वयं ऐसी हूँ।'

सहसा दासी ने आकर कहा—'हुजूर! छोटे सेठ साहब आ रहे हैं।'

प्रभातकिरन सावधान होकर बैठ गई। विमलचन्द्र मोर बाँधे रतनबाई को खींचे लिये चला आ रहा था, जैसे कोई मल्लाह कोई बोझी नाव खींचता है। उसके पैर कहीं पड़ रहे थे, हाथ कहीं जा रहे थे।

कमरे के अन्दर दाखिल होकर उसने रतनबाई से कहा—'इन्हें भी प्रणाम करो। ये मेरी नई माता जी हैं।'

रतनबाई प्रभातकिरन के पैरों पर मस्तक रखने ही जा रही थी कि उसने उसे बीच हो में उठा लिया और गद्गद् कण्ठ से कहा—'जिओ। युग युग जिओ। तुम्हारा सुहाग भरा पूरा रहे।'

पीछे-पीछे पार्वती बाई भी आई। अपने पुत्र और पुत्र वधू को वे एक घड़ी को भी नहीं छोड़ना चाहती थीं।

'चलो, सब जने आँगन में चलो, वर वधू की आरती उतारी जायगी। बहन चलो।' उसने प्रभातकिरन को खींचा।

प्रभातकिरन के लिये इतना बहुत था। वह चल पड़ी। आँगन में पहुँचने पर मां ने एक चांदी के थाल को जो चांदी की छोटी छोटी कटोरियों से भरा था, जिनमें से प्रत्येक में कपूर के टुकड़े रखे थे, उठा कर वर वधू की आरती उतारी। चाँदी की प्रत्येक कटोरी को जिसमें कपूर जल रहा था, वह उठाती उसे वर वधू के मुखों के गिर्द एक बार घुमाती और उसे एक तरफ फेंक देती।

उन कटोरियों को कोई भी उठा कर ले जा सकता था। पर सेठ जी के आँगन में जो स्त्रियाँ जमा थीं वे कोई गरीब थोड़े ही

थीं। वे भी सम्पन्न सेठानियाँ थीं। वे भी रुपये व मोहरें फेंक रही थीं।

समान उम्र होने से रतनबाई प्रभातकिरन की ओर बहुत आकृष्ट हुई। दोनों में पहले ही दिन बड़ी घनिष्टता हो गई। समस्त शिष्टाचारिक कार्य्य सम्पन्न होने पर नव वधू के साथ वह उसके कमरे में गई और दोनों में घनिष्टता पूर्ण बातें होने लगी, प्रभातकिरन को सेठ जी और उनके पत्र का बिल्कुल ही ध्यान न रहा।

सेठ जी का पत्र उसके कमरे में ही पड़ा रह गया था। वह पार्वतीबाई के हाथ लगा। एक दासी उस पत्र को उठा लाई थी। सेठ जी की लिखावट वह पहचानती थी। पार्वतीबाई की वह बड़ी विश्वासपात्र थी। एक प्रकार से वह प्रभातकिरन पर निगाह रखती थी और उसकी गतिविधि की सारी खबर सेठानी को देती थी। आज सेठ जी का पत्र पाकर वह बहुत प्रसन्न हुई थी।

पार्वतीबाई ने अपने एकान्त कमरे में जाकर उस पत्र को पढ़ा। पत्र पढ़ कर वह बहुत दुःखी हुई। उसका विश्वास ठीक निकला। वह जानती थी कि सेठ जी नये-नये विवाह क्यों करते हैं। राधाकृष्ण के मिलन और वियोग का तर्क पहले भी उसे नहीं जँचा था। अब तो और भी नहीं जँचा। सेठ जी के प्रति उसे बड़ा गुस्सा आया। पर करती क्या? गुस्से को पीकर वह रह गई। प्रभातकिरन पर भी उन्हें गुस्सा आया कि इसी ने सेठ जी को यह लत लगाई।

उसी समय खबर आई कि सेठ रङ्गीलाल का पता नहीं चलता। उनके इतने बड़े जीवन में आज पहला अवसर था, जब वे लापता थे और बता कर नहीं गये थे। आज, जब कि इतने मेहमान रङ्गमहल में जमा हैं? वे कहाँ जा सकते हैं?

ज्यों-ज्यों उनका पता लगने में देरी हुई, लोगों की घबराहट बढ़ने लगी।

एक दासी ने आकर पार्वती बाई से कहा—'सेठ जी कहाँ हैं ?'

'मैं क्या जानूँ ।'

'नई सेठानी से पूछती हूँ तो वे कहती हैं—मैं क्या जानूँ और आपसे पूछती हूँ तो आप भी यही कहती हैं ।'

इतने में प्रभातकिरन वहाँ आई । एक दूसरी दासी ने उसे खबर दी थी कि सेठ जी ने उसे जो पत्र लिखा था वह पार्वतीबाई के हाथ पहुँच गया है । वह पार्वतीबाई से पूछना चाहती थी कि वे उसकी चीजें क्यों इस प्रकार उड़वा लेती है ? पर पार्वती बाई का उस समय का उदास मुख देख कर उससे कड़ाई न बर्ती गई । उसने केवल इतना कहा—'आज सेठ जी ने मुझे जो पत्र भेजा था वह क्या आपके पास है ?'

'हाँ, यह लो ।'

'आपके पास यह कैसे आया ?'

'मेरे पास तो सभी कुछ आता है । अब यह संवाद आया है कि सेठ जी गायब हैं ?'

'गायब हैं ?'

'हाँ ?'

'वे कहाँ हो सकते हैं ?'

'तुम जानो ! उनकी 'विल' तुम्हारे पास है । वे न रहेंगे तो उनका सब धन तुम्हें मिल जायगा ।'

'बहन ऐसी बात मत कहो । सेठ जी को मार कर मैं उनका धन नहीं लेना चाहती ।'

'सब सामने आयेगा ।'

पार्वती बाई बहुत गुस्से में थी । प्रभातकिरन वापस चली गई । अपने कमरे में जाकर वह फिर लेट रही । उसने कोई काम ऐसा नहीं किया, जिससे पार्वती बाई को कष्ट पहुँचे ? वे उससे

क्यों अप्रसन्न है ? वह सोचती और सोचती पर कोई कारण समझ में न आया ?

गङ्गाबाई को सेठ जी के गायब होने का खबर दी गई । त्रिकालदर्शी महाराज बुलाये गये । दोपहर से शाम हो गई । पर न तो उनके ज्योतिष ने कुछ काम दिया और न और किसी प्रकार सेठ जी का कुछ सुराग लगा ।

दूसरे दिन सबेरे के समाचार पत्रों में यह समाचार छपा ! सारे बम्बई में उस दिन इसी एक बात की चर्चा थी । तरह तरह के लोग तरह तरह की बातें कह रहे थे ।

गङ्गाबाई ने उस दिन भोजन नहीं किया । पार्वती बाई उदास थीं । उन्हें इस बात का भी पश्चात्ताप हो रहा था कि उन्होंने प्रभातकिरन से नाहक ऐसी कड़ी बात कही थी और इधर प्रभातकिरन को यह बात लग गई थी । सेठ जी को वह प्यार नहीं कर सकती थी । पर उनके प्रति अपने कर्तव्य को वह समझती थी । वह हिन्दू नारी थी । जब उसने सेठ जी से विवाह किया था तब उनका कुशल मङ्गल ही उसे अभीष्ट था । उनका मरण तो वह कदापि नहीं सोच सकती थी ।

पुलीस बुलाई गई और जाँच पड़ताल शुरू हुई । बरात की वापसी से कोई एक घण्टा पहले ही सेठ जी रङ्गमहल में पहुँच गये थे । यह देखने वालों ने बताया । रङ्गमहल के कर्मचारियों को बुला कर उन्होंने विविध आदेश दिये थे । उसके बाद वे अपने खास कमरे में चले गये थे । उसके बाद एक घटना हुई थी । उनके खास कमरे से एक बहुत बड़े कालीन का पुलिन्दा दो मजदूरों के सिर पर रखवा कर बाहर निकाला गया था । कहा गया था कि यह विश्राम वाटिका में मेहमानों के लिये ले जाया जा रहा है । यह आदेश रङ्गमहल के किसी कर्मचारी ने दिया था ! जो मजदूर कालीन के उस

पुलिंदे को ले गये थे, उनके बयान लिये गये। पुलिस के एक अफि-सर ने पूछा—'कालीन तुम लोगों ने लपेटा था ?'

'नहीं हुजूर, पहले से लिपटा था ?'

'भारी था या हलका ?'

'हुजूर बहुत भारी था। कमर टूटी जा रही थी ?'

'उसे तुम कहाँ ले गये ?'

'बाहर खड़ी मोटरों में से एक पर रखा था ?'

'उसी मोटर पर क्यों रखा ?'

'उसी पर रखने का आदेश दिया गया था ?'

जिसने आदेश दिया था, उसे तुम पहचान सकते हो ?'

'हाँ हुजूर ?'

रङ्गमहल के सब कर्मचारी जमा किये गये और मजदूरों के सामने पेश हुये। पर वे किसी को पहचान न सके। उस दिन किराये की सैकड़ों मोटरें सेठ जी के काम में दौड़ रही थीं। किस पर वह कालीन रखा गया, इसका पता लगना भी सम्भव न था। विश्राम वाटिका में कालीन का पता न था।

यह बात भी मालूम हुई कि प्रभातकिरन उस दिन वरवधू के स्वागत से लौट गयी थी और अपने कमरे में थी। बहुत कुछ इसी बात की सम्भावना की जा रही थी कि प्रभातकिरन ने सेठ जी की हत्या करके उन्हें कालीन में लपेट कर बाहर भिजवा दिया है। उसने पहले से यह सब व्यवस्था कर ली होगी।

यह बात विमलचन्द के सामने लायी गयी और पुलिस ने प्रभातकिरन को गिरफ्तार करने का इरादा किया। परन्तु विमल-चन्द ने कहा—'नहीं, मेरा शक मेरी नयी माता पर नहीं है ?'

पुलिस ने आग्रह किया कि वह प्रभातकिरन से भी कुछ पूछ-ताछ करना चाहती है। प्रभातकिरन पुलिस के सामने लायी गयी ?

प्रश्न— जिस दिन बारात लौटी, आप कहाँ थीं ?'

'अपने कमरे में ?'

'सेठ जी से आप से भेंट हुई थी ?'

'उस दिन भेंट नहीं हुई ?'

'आप बधू के स्वागत के लिये बाहर निकली थीं ?'

'हाँ ?'

'फिर लौट गयी थीं ?'

'हाँ ?'

'क्यों ?'

'मेरा जी दुःखी था ?'

'क्यों ?'

'कारण नहीं बताना चाहती ?'

'सेठ जी को आपने कोई पत्र लिखा था ?'

'हाँ ?'

'कब लिखा था ?'

'जिस दिन बारात जा रही थी ?'

'उत्तर कब मिला ?'

'जिस दिन बारात लौटी ?'

'उत्तर किसने आप को दिया ?'

'मेरी पलङ्ग पर रखा था ?'

'आपकी पलङ्ग पर उसे किसने रखा होगा ?'

'शायद सेठ जी ने स्वयं रखा होगा ?'

'तो वे आपके कमरे में गये थे ?'

जरूर गये होंगे। पर यही सोच कर गये होंगे कि मैं कमरे में नहीं हूँ ?'

'पत्र दिखा सकती हैं ?'

'हाँ ?'

प्रभातकिरन ने सेठ जी का पत्र बढ़ा दिया। पत्र पढ़ने के बाद पुलिस के अफसर ने पूछा—'यह लाजवती कौन है?'

मैं नहीं जानती?'

'हमारा आप के ऊपर शक है। हम आपको गिरफ्तार करना चाहते हैं?'

आप शौक से ऐसा कर सकते हैं। पर मैं निर्दोष हूँ?'

पुलिस की मोटर बाहर आकर खड़ा हुई और वह प्रभातकिरन को गिरफ्तार करके ले जाना ही चाहती थी कि घसीटा वहाँ उपस्थित हुआ। उसने एक पत्र पुलिस अफसर को दिया—

'महोदय, प्रभातकिरन को मत सतावें। सेठ जी जीवित हैं और मेरी कैद में हैं।

—सरयूप्रसाद।

'यह सरयूप्रसाद कौन हैं?'

अनेक लोग जो वहाँ उपस्थित थे, एक साथ बोल उठे—'सेठ जी की मिल के मजदूरों का नेता।'

'सरयूप्रसाद कहाँ है?' पुलिस के अफसर ने घसीटा से पूछा।

'यह मैं नहीं जानता। मुझे उन्होंने अभी अभी यह कागज आपको देने को कहा था। मैं अन्दर आ रहा था। लेता आया?'

प्रभातकिरन की गिरफ्तारी रुक गई और सरयू की तलाश होने लगी।

बारहवाँ परिच्छेद

घसीटा ने दूसरा चिट प्रभातकिरन को दिया। उसमें लिखा था—'सेठ जी का और मेरा दोनों का अन्त समय करीब है। यदि तुम इनमें से एक को या दोनों को बचाना चाहती हो तो आज शाम को उसी पेड़ के नीचे उसी समय मुझ से अकेले मिलो। —सरयूप्रसाद।'

प्रभातकिरन इस चिट को पाकर काँप उठी। हाय, क्या होने वाला है? हाय!! सरयूप्रसाद, तुमने यह क्या किया। क्या तुम नहीं जानते कि मैं इस स्थिति में कहाँ हूँ कि इतनी रात गये तुमसे अकेले मिलने आऊँ। तुम खुद यहाँ आ सकते थे। उसकी आँखों से आँसुओं की लड़ी बह चली। वह अपने कमरे में आ गई और पलङ्ग पर पड़ी बिसूरने लगी। ओफ, उसने क्या अपराध किया था कि उसे ये दिन देखने पड़े। भरी समाज में वह पति की हत्या-कारिणी घोषित की गई।

ओफ! वह इस विवाह में शरीक होने आई ही क्यों? वह अपने माता पिता के साथ मढुंगा में अलग मजे में रह रही थी। यों भी स्पष्ट था कि सेठ जी उसकी परवा नहीं करते और अवश्य नई शादी करेंगे। पार्वती उसकी सौत ही है। फिर कौन सा आक-र्षण उसे यहाँ खींच लाया।

पलङ्ग पर पड़ी पड़ी वह बिसूरती जाती थी और भय से थर-थर काँपी जा रही थी।

जो कुछ बातें हो गई थीं, उनसे गंगाबाई की यह धारणा बन गई थी, कि प्रभातकिरन को अवश्य सेठ जी का कुछ पता है। उनका ख्याल था कि वह उनके प्राणों का अन्त करके अवश्य

उनकी विल का लाभ उठाना चाहती है। उनकी अपार सम्पत्ति की स्वामिनी बनना चाहती है। सम्पत्ति वह ले, बुढ़िया को आपत्ति नहीं थी। पर उसके पुत्र को वह छोड़ दे। कुछ ऐसे ही प्रार्थना करने गंगाबाई प्रभातकिरन के कमरे में पहुँची। कुछ ऐसी ही भाव पार्वती बाई के मन में भी उठ रहे थे। माना, कि सेठ जी उससे बात भी न करते थे पर उसके सुहाग के चिह्न तो वे थे। उनका मरण वह कदापि नहीं चाहती थी। वह भी प्रभातकिरन के कमरे में आयी। अपने साथ रतनबाई को भी लायी। पुत्र-वधू को वह अकेले न छोड़ना चाहती थी।

माता, दादी और पत्नी का पता लगाता हुआ विमलचन्द्र भी वहाँ पहुँचा। इस प्रकार पूरा परिवार ही वहाँ जमा हो गया।

गङ्गाबाई ने प्रभातकिरन से पूछा—'बहू! क्या किया जाय?' मानों उसी के हाथ में सब कुछ है।

पार्वती बाई ने पूछा—'सरयू को तो तुम जानती हो?'

'हाँ।'

'उसका सेठ जी ने कुछ बिगाड़ा है?'

'कह नहीं सकती।'

गङ्गाबाई ने पूछा—'सेठ जी को उसी ने छिपा रक्खा है?'

'हाँ।' प्रभातकिरन ने कहा।

'तुम सेठ जी को उससे छुड़ा सकती हो?' पार्वती बाई ने कहा।

प्रभातकिरन कुछ बोली नहीं। पर उसके इस न बोलने का अर्थ यही लगाया गया कि वह इस इस मामले में बहुत कुछ जानती है। और सेठ जी की रक्षा उसके द्वारा हो सकती है।

प्रभातकिरन ने अपना सन्दूक खोला। उसमें से वह विल निकाली जो सेठ जी ने उसे दी थी। उस विल को विमलचन्द को दे कर वह बोली—'यह लीजिये अपने पिता की विल! यदि वे

जीवित न रहे तो मैं भी न रहूँगी। इस प्रकार आप अपनी सम्पत्ति के उत्तराधिकारी होंगे।' और उसके बाद वह बोली—'स्त्री को मैं स्वाधीन नहीं मानती। पति की गैरहाजिरी में मैं अपने आपको आपके अधीन मानती हूँ। इसलिए आपसे आज्ञा मांगती हूँ कि मुझे बाहर जाने दें। सेठजी को जीवित पाऊँगी तो उनको लेकर मैं यहाँ आऊँगी, नहीं तो मेरा अन्तिम आशीर्वाद लीजिये और मुझे जाने दीजिये।'

एक भय की लहर सभी उपस्थित जनों में छा गई। प्रभातकिरन की इस बात का सबों पर इतना प्रभाव तो पड़ा ही कि वह निर्दोष है।

विमलचन्द्र ने उस विल को बगैर देखे ही प्रभातकिरन को वापस कर दिया। कहा—'माताजी, तुम मेरी संरक्षिका हो। तन में जब तक प्राण रहें, बनी रहो। तुम नारी को पराधीन मानती हो। पर मैं उसे स्वाधीन मानता हूँ। यदि तुम पिताजी का पता लगा सको, तो अवश्य लगाओ। पर यह प्रतिज्ञा मत करो कि उनको न पाओगी तो तुम भी घर न लौटोगी।'

तब प्रभातकिरन ने सबको वह चिट दिखाया जो सरयू ने उसके पास भेजा था! राय हुई कि उस चिट को पुलिस के पास भेजा जाय। पर अन्त में निश्चय हुआ कि उससे कुछ न होगा। यदि वह जान पर खेलने पर आमादा हो जाय, सेठजी का पता न बताए तो कोई लाभ न होगा। सेठजी को जल्दी से जल्दी घर लाने का एक ही उपाय है। प्रभातकिरन उससे मिले। उससे अनुनय विनय करे।

शाम होते ही मोटर तैयार की गई। राम का नाम लेकर सबने प्रभातकिरन को रवाना किया।

विक्टोरिया पार्क के फाटक पर मोटर आकर रुक गई और प्रभातकिरन अन्दर घुसी। इस पार्क में समय असमय वह अनेक बार आई गई है, पर आज उसके पांव न उठ रहे थे।

आसमान में पूर्ण चन्द्रमा उदित था। पर वह उसे अंगार सा प्रतीत हो रहा था। दूर के पेड़ों की काली आकृति उसे बहुत ही डरावनी प्रतीत हो रही थी। पर उसे अपने बुड्ढे पति के प्राण बचाने थे। वह साहस करके उस पेड़ के नीचे गई। पेड़ के नीचे अन्धकार छाया हुआ था और ऊपर कमरे में, जिसमें उसके माता पिता रहते थे, कोई और किरायादार आगया था। सम्भवतः दिन भर काम के बाद वह अपने साथियों को बटोर कर कोई बेढङ्गा गाना गा रहा था। उन सबकी आवाजें पेड़ के नीचे आ रही थीं। इससे प्रभातकिरन का भय कुछ कम हुआ।

उसको बैठे थोडी ही देर हुई थी कि सरयू वहां आया। अन्धकार में उसका चेहरा पहचाना नहीं जा सकता था, पर उसकी चाल प्रभातकिरन की पहचानी हुई थी।

'कौन ?' उसने प्रभातकिरन की ओर संकेत करते हुए पूछा।

'मैं हूँ।'

'अच्छा ? आप आगईं। बूढ़े पति को बचाना चाहती हैं ?'

प्रभातकिरन कुछ न बोली।

सरयू ने कहा—आइए, खुले में बैठकर बात करें। मेरी आपकी यह अन्तिम भेंट है ?

सरयू पेड़ के नीचे से बाहर खुले मैदान की ओर गया। प्रभातकिरन उसके पीछे-पीछे गई।

कुछ दूर पर एक फव्वारा था। उसके गिर्द संगमरमर का बेंच नुमा चबूतरा बना हुआ था। सरयू एक चबूतरे पर दक्खिन की ओर मुंह करके बैठ गया और बोला—'आइये, बैठिए।'

प्रभातकिरन कुछ डरी-डरी सी उसके पास आकर बैठ गई।

'क्या चाहती हो ?' बोलो ?

'मनुष्य का सोच कब हुआ है ?'

'क्यों' तुम्हारा सोचा तो हो गया ?'

मेरा सोचा नहीं हुआ ? यदि होता तो मैं तुमसे इतनी दूर न होती ? आज तुम्हारी होती ?'

'बस, ऐसी दिल-लुभावनी बातें न करो। एक बार मैं तुम्हारी बातों में आ गया था। अब नहीं आने का ?'

'मैंने तुम्हें अपनी बातों में लाने की कभी चेष्टा नहीं की। मैं असहाय अबला थी। तुम्हें मुझ पर दया आई। तुमने मेरी सहायता की ?'

'नहीं, सहायता तो सेठजी ने की ?'

'सेठजी ने भी सहायता की। पर उन्होंने अपनी सहायता का मूल्य मांगा और मुझे चुकाना पड़ा ?'

सरयूप्रसाद ने एक दीर्घ निःश्वास लिया—'हूँ।'

प्रभातकिरन बोली—'तुमने भी सहायता की। तो क्या मैं समझूं कि तुम भी अपनी सहायता का मूल्य चाहते हो ?'

'नहीं, मैं मूल्य नहीं चाहता ?'

'तो मुझे इतनी रात को क्यों बुलाया है ?'

'यही बताने के लिए। सुनो, वह सेठ हमारा तुम्हारा दोनों का शत्रु है। हमारा भावी प्रेम-मय जीवन उसी के कारण मिट्टी में मिल गया है। अब मैंने उसे अपने काबू में कर लिया है ? क्या बजा होगा।'

प्रभातकिरन को घड़ी देखने के लिये अब किसी सड़क का घण्टाघर देखने की जरुरत नहीं थी। उसकी कलाई पर सोने की रत्नजड़ित घड़ी बंधी थी जो अंधेरी रात में भी टाइम बता सकती थी। उसने कलाई की ओर देखकर तुरन्त ही कहा—"नौ बजे हैं ?"

'ठीक ! तीन घण्टे और हैं। ठीक १२ बजे तुम्हारे सेठ की दुर्गति होनी शुरू होगी। लाख-लाख मधुमक्खियां उसके शरीर में जहरीले डङ्क चुभावेंगी।'

प्रभातकिरन सिहर उठी।

'क्यों तुम मुझे प्यार करती हो?' सरयू ने उसकी ओर देखते हुए व्यङ्ग से पूछा।

'नहीं मैं किसी को प्यार नही कर सकती। मैं बडी खुदगर्ज हूँ।'

'हूँ।' सरजू बोला।

प्रभातकिरन ने कहा—'तुम जानते हो कि मैं बेबस थी।'

'अब तो बेबस नहीं हो?'

'अब तो मेरी अपनी कोई इच्छा ही नहीं रह गई है?'

'तब यहां आई क्यों हो?'

'तुमने बुलाया था, इसलिए आई।'

'हूँ।' सरजू बोला।

प्रभातकिरन ने कहा—'मुझे माफ करो।'

'तुम्हें तो मैंने पहले ही माफ कर दिया। पर तुम्हारे सेठ को माफ नहीं करूंगा। उसकी जान लूँगा; और अपनी जान दूँगा।'

'तब मुझे क्यों बुलाया?' प्रभात किरन सिसकने लगी।

'अच्छा तुम क्या चाहती हो, बोलो?'

'मेरी बात मानोगे?' प्रभातकिरन ने अत्यन्त विनयभारी दृष्टि से सरयूप्रसाद की ओर देखा।

ऊपर आसमान में पूर्ण चन्द्र चमक रहा था। नीचे पृथवी पर प्रभातकिरन पूर्ण चन्द्र की ही भांति उदित थी। पर दोनों में उसे कलंक कालिमा दिखी। दोनों उसे अति तुच्छ और दयनीय जान पड़े।

'हां मानूँगा।' कहो।

'तुम भी जिओ और मेरे सेठ को भी जीने दो?'

'यह असम्भव है? दो में एक ही जी सकते हैं?'

'तब पहले मुझे मार डालो। फिर तुम्हारे जी में जो आवे करना।'

'औरत पर मैं हाथ नहीं उठाऊँगा?'

'और उसकी रक्षा भी नहीं करोगे?'

'तुम्हारा रक्षक तुम्हारा सेठ है?'

'नहीं, मेरे रक्षक तुम हो सेठजी के हाथ तो मैं बिकी हूँ। उन्होंने मुझे खरीदा है।'

प्रभातकिरन और भी अधिक सिसकियाँ भरने लगी। उस चाँदनी रात में, उस निर्जन स्थान में, संगमरमर की स्वच्छ शिला पर बैठे हुये उससे अधिक निर्दय न बन गया। वह बोला—अच्छा तुम्हारे सेठ को मैं छोड़ दूँगा। पर छूटने पर वह मेरे प्राणों का ग्राहक बन जाय तो।'

'इसका जिम्मा मैं लेती हूँ?'

'चलो?'

दोनों बाग के बाहर आए। मोटर खडी थी। दोनों उस पर बैठ गए।

'अंधेरी चलो?'

'अंधेरी।'

'हां?'

'अंधेरी बहुत दूर है। जाने भर का तो शायद हो जाय, पर आने के लिय पेट्रोल काफी न होगा।'

'अच्छा चलो।' प्रभातकिरन बोली—'देखा जायगा।' उसे अपने सेठ के प्राण बचाने थे।

ड्राइवर ने पूरी स्पीड पर मोटर छोड़ दी।

रास्ते में किसी से कोई बात न हुई। सबके मन अपने अलग अलग चिन्तनों में लीन थे।

अंधेरी पहुँचने पर सरयू ने ड्राइवर से कहा—'उस स्थान पर चलो, जहाँ गुफाएँ हैं ?'

ड्राइवर सहमा। 'वहां क्या है ?' वह बोला।

'वहीं एक गुफा में मैंने सेठ रंगीलाल को कैद कर रक्खा है ?'

ड्राइवर कुछ बोला नहीं। स्थिति की गम्भीरता को वह समझता था। उसे डर था कि कहीं यह अर्द्ध-पागल व्यक्ति सबको गुफाओं के अन्दर ले जाकर मार न डाले। पर वह कुछ बोला नहीं। वह भय नहीं प्रदर्शित करना चाहता था। पर हां, उसने तै कर लिया था कि वह मोटर से नीचे नहीं उतरेगा। और अगर कोई खतरा उपस्थित होगा तो कम से कम अपने प्राण लेकर तो भागेगा ?

अन्धेरी की विशाल गुफाओं के पास ले जाकर ड्राइवर ने मोटर रोक दी।

सरयू ने प्रभातकिरन से कहा—आओ, वह एक गुफा के अन्दर घुसने लागा।

'ड्राइवर ! तुम भी जलो।' प्रभातकिरन ने भयत्रस्त वाणी में कहा—

'तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं है।'

'है क्यों नहीं ?'

'तब अकेले आओ।'

प्रभातकिरन उसके पीछे पीछे गई। ड्राइवर सहमा स किंकर्तव्य विमूढ़ सा बना अपनी जगह पर ज्यों का त्यों बैठा रहा।

गुफा के अन्दर भीषण अन्धकार छाया हुआ था। वन्य पशुओं, चमगीदड़ों की दुर्गन्धि उसके अन्दर समाई हुई थी। सरयू ने आगे का रास्ता देखने के लिए अपनी बिजली की बैटरी से रोशनी फेंकी। प्रभातकिरन ने देखा कि कटे हुए कगारों सी ऊँची दीवालें हैं और स्थान बहुत ही भयानक है। उसने उस क्षणिक

प्रकाश में एक ओर बुद्ध देव की एक मूर्ति भी देखी जो उसे बहुत ही भयानक जान पड़ी। वह अत्यन्त सहम गई और सरयू से चिपट गई। उस अंधेरी सूनसान गूफा में प्रभातकिरन को अपने इतना निकट पाकर सरयू की पशु-वृत्ति जाग उठी। उसने सोचा सेठका मर जाना ही दोनों के हित में अच्छा है। उसने प्रभातकिरन के कान के पास मुंह ले जाकर धीरे से कहा—'मेरी एक बात मानोगी ?

'कहो ?'

'सेठ को मर जाने दो ? तुम मेरे साथ मेरे देश को भाग चलो ?'

प्रभातकिरन ने उसी प्रकार उसके कान के पास मुंह ले जाकर कहा—'सेठजी जीवित रहने पर भी इस काम में बाधक नहीं हो सकते। पर यह सब तै करने का यह समय और अवसर नहीं है। इस समय तुम मेरी बात मानो ! मुझे यहां से निकालो, सेठजी के प्राण बचओ। उसके बाद मैं तुम्हारी बात पर विचार करूँगी।'

'अच्छा, चलो।'

दोनों क्रमशः आगे बढ़ते गए। सरयू ने कई बार मार्ग देखने के लिये बिजली की बैटरी से रोशनी फेंकी और प्रभातकिरन विशाल डरावनी मूर्तियां देखकर उससे चिपट-चिपट गई।

'दिन में कभी आओगी, तब तुम देखोगी कि ये मूर्तियां ऐसी डरावनी नहीं है ?'

'ईश्वर न करे कि यहां मुझे दुबारा आना पड़े।'

प्रभातकिरन ने भय कम्पित स्वर में जरा जोर से कहा।

एक ओर से आवाज आई—'कौन ! प्रभात।'

यह सेठ रंगीलाल का परिचित स्वर था।

'हां, मेरे स्वामी, तुम कहां हो ?' प्रभातकिरन जिधर से आवाज आई थी, उधर बढ़ी।

'ठहरो !' आज्ञा के स्वर में सरयू बोला।

प्रभातकिरन सहम कर उसके पास फिर आ गई। बोली—'रोशनी करो। मैं देखूँ कि सेठजी कहां हैं। हाय राम।'

प्रभातकिरन का हाथ पकड़ कर थोड़ा और बढ़ने पर सरयू ने रोशनी फेंकी। सेठजी सामने एक विशाल प्रस्तर-मूर्ति के पांव से बँधे हरिकीर्तन कर रहे थे। उन्हें जैसे किसी बात की चिन्ता न हो, जैसे मौत उनके लिये कोई वस्तु न हो, जैसे जीवन का उन्हें जरा भी मोह न हो। यह उनका दूसरा रूप था, जो प्रभातकिरन ने देखा। उसने मन ही मन उनके धैर्य्य की प्रशंसा की। अवगुणों के उस क्षण भङ्गुर तन में धैर्य्य की यह अमर ज्योति देख कर वह गदगद हो गई।

'तुम यहां कैसे प्रभात ?'

'और आप यहां कैसे ?' प्रभातकिरन ने पूछा।

'मुझे यह व्यक्ति लाया है, जिसे तुम अपना प्यारा और विश्वासी भाई कहती हो ?'

'मुझे भी यही ले आए हैं ? मैं चाहती हूँ ये भी जिएँ, आप भी जिएँ ?'

'क्यों श्री सरयूप्रसादजी ?' सेठजी ने मुस्कराकर कहा।

सरयू कुछ चिंतित, कुछ लज्जित, कुछ थकित था। उसकी समझ में न आया कि वह क्या कहे। जल्दी में उसके मुँह से इतना ही निकला—'जी सेठ जी।'

'अच्छा मुझे बन्धनमुक्त करो।'

प्रभातकिरन ने ऊपर देख कर कहा—'अरे ! वह मधु-मक्खियों का छत्ता है। भैय्या ! जल्दी करो और वह आग सी क्या है ?

सरयू ने कहा—'वह एक जलती हुई रस्सी है। आग ऊपर तक पहुँचेगी तब फूस में लग जायगी और मधुमक्खियां उड़ उड़ कर ......।'

'हाय ! भैय्या सेठजी ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था।'

सरयू ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने जल्दी जल्दी सेठजी के बन्धन खोले। फिर पूछा—'क्या बजा है।'

'साढ़े ग्यारह !' प्रभातकिरन बोली।

अभी आग लगने में आध घंटे की देर है। इस बीच में हम बड़े मजे में गुफा के बाहर हो जायेंगे।

बन्धन मुक्त होने पर सेठजी ने कहा—

सरयूप्रसादजी, तुम मजदूरों के नेता बन गये हो, उनका संघ तुमने कायम कर लिया है। तुम एक सिद्धान्त के लिए खड़े हो। ठीक है। मेरा मार्ग दूसरा है। लाख मजदूरों से हमदर्दी रखूँ फिर भी मैं पूँजीपति हूँ। हम तुम मित्र रहते हुए भी अपने अपने मार्ग पर चल सकते हैं—'क्यों है न ?'

'जी, सेठ जी !' सरयूप्रसाद ने विनम्रता पूर्वक कहा। उसका वह उद्दण्ड उन्मादी स्वभाव न जाने कहां चला गया था।

वह बोला—'सेठजी, मुझे बांध दीजिए और आप सपत्नीक बाहर जाइए। मैं.........!'

सेठ रंगीलाल ने बात काट कर कहा—पागल हुए हो। हमारे तुम्हारे संघर्ष के हार जीत के बहुत अवसर आयेंगे चलो।'

'ओह, सेठजी कितने उदार हैं' सरयूप्रसाद ने मन ही मन कहा और सब गुफा के बाहर चल पड़े।

मोटर के पास पहुंच कर सेठजी ने अपने ड्राइवर को भेंटा। वे मौत के मुख से निकले थे। ड्राइवर भी अपने सेठ को पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और सबको लेकर वापस लौटा।

सेठजी का हृदय उस समय सरयूप्रसाद के प्रति घृणा से ओत-प्रोत था। वे उसे निर्दयतापूर्वक मरवा डालने की योजना बना रहे थे। पर अपने इस मनोभाव को दबाए हुए वे उससे खूब घुल-घुल

कर बातें कर रहे थे। वे पूँजीपति थे, वे मन के क्रोध को दबा कर विपक्षी से स्नेह से बातें करने के अभ्यासी थे। अतएव उनके लिए यह कोई नई बात न थी और इधर सरयू समझ रहा था, ये देवता हैं। उसने उनको पहचानने में भूल की थी।

तेरहवां परिच्छेद

सेठ रङ्गीलाल प्रभातकिरन से शादी करके पछता रहे थे। खेद कि लाजवंती से उनकी पहले भेंट न हुई। लाजवन्ती स्वर्ग की अप्सरा है और प्रभातकिरन उसके सामने तुच्छ जँचती है। फिर लाजवन्ती में वे सब गुण मौजूद हैं, जो स्त्री में होने चाहिए। वह जरूर उनकी पूर्व जन्म की पत्नी है। अगर राधा का कोई स्त्री अवतार हो सकती है, तो वह है। वे जरूर लाजवन्ती से शादी करेंगे। और प्रभातकिरन उसे रहना होगा, घर में रहेगी, जैसे पहले से एक पत्नी रह रही है। नहीं अपना रास्ता देखेगी। उस अनगढ़ स्त्री के पीछे वे लाजवन्ती को छोड़ नहीं सकते। और फिर लाजवन्ती की सहेली ब्रजराज-कौर कितनी सुन्दर है। कितनी अच्छी, कितनी भोली। बेचारी का विवाह हो चुका है, नहीं तो वह भी मेरे व्यक्तित्व में अपना व्यक्तित्व मिला देती। एक के सिद्धांत को इन दोनों स्त्रियों ने खूब समझा है। पुरुष एक है, स्त्रियां अनेक हैं। स्त्री एक ही शादी कर सकती है, पुरुष अनेक शादियां कर सकता है। यही सनातनधर्म है, यही सनातन की परम्परा है। राजा दशरथ के तीन रानियां थीं; पर वे सब मिल कर एक थे। श्री कृष्णजी के दस सहस्र रानियां और पटरानियां थीं; पर वे सब मिलकर एक थे। पुरुष समुद्र है, स्त्रियां नदियां हैं। नदियों की सार्थकता इस बात में हैं, कि वे अपना व्यक्तित्व किसी पुरुष के व्यक्तित्व में मिला दें। स्त्री का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है।

सेठ रङ्गीलाल कान से टेलीफोन लगाए बाजार के विविध भाव-ताव ले रहे थे और इस प्रकार की विचारधारा में निमग्न भी होते जा रहे थे। सहसा कमरे में किसी के आने की आहट मालूम

हुई। उन्होंने सोचा शायद लाजवंती है। वे उसके स्वागत को चंचल हो उठे। पर नहीं, यह सरयूप्रसाद था। उसको देखते ही सेठजी जल उठे। कुछ-कुछ वे डरे भी। न जाने दुष्ट किस इरादे से आया है।

बड़ी बेरुखाई से उन्होंने पूछा—'तुम कैसे आए ?'

'इच्छा हुई, चला आया।' सरयू ने उत्तर दिया।

'तुम्हें किसी ने रोका नहीं ?'

'कौन रोकता ? आपकी आज्ञा है, कि मैं जब चाहूँ सेवा में उपस्थित हो सकता हूँ।'

'अच्छा तो आज से मैं यह आज्ञा रद्द करता हूँ। इस आज्ञा का ही यह परिणाम था कि तुम मुझे अन्धेरे में उठा ले गए थे। याद है !'

'हां,' सरयू बोला—'पर अब ऐसा न होगा।'

'हो, या नहीं, तुम यहां मेरी आज्ञा के बिना मत आया करो !'

'बहुत अच्छा।' सरयू का चेहरा कुछ तमतमा आया। 'कोई है ?' सेठजी ने घंटी बजाई।

दो तीन चपरासी एक साथ दौड़ते हुए अन्दर आये।

'इन्हें पहचानते हो ?' सेठजी ने सरयूप्रसाद की ओर इशारा किया।

'हां,' चपरासियों ने सरयूप्रसाद का अभिवादन करते हुए कहा।

'आइन्दा ये आवें तो इन्हें बाहर ही रोक रक्खो। फिर मुझसे पूछ कर इन्हें अन्दर आने दो।'

चपरासी कुछ नहीं बोला। सेठजी जानते थे कि वे सब सरयू का आदर करते हैं।

'अच्छा जाओ।' उन्होंने चपरासियों से कहा।

फिर वे सरयूप्रसाद की ओर देख कर घृणा से ओंठ चबा कर

बोले—'देखो जी, मैं तुमसे नहीं मिलना चाहता। तुम्हारा मुँह भी नहीं देखना चाहता। तुम कहीं और काम ढूँढ़ लो।'

सरयू के लिए यह असह्य हो उठा। वह बोला—'इसीलिए मैं आपका अन्त कर डालना चाहता था। पर बहन के कहने से आप को छोड़ा। याद है आपने क्या वादा किया था ?'

'हां, याद है। तभी तो कहता हूँ कि कहीं और काम ढूँढ़ लो ! तुम मजदूरों का यूनियन बनाओ, जो जी में आवे करो, पर मेरे पास मत आया करो।'

'मैं स्वेच्छा से आपके पास नहीं आया हूँ। यूनियन की ओर से आया हूँ।'

'यूनियन की ओर से ?'

'हां ?'

'तुम्हारे यूनियन को मैं नहीं मानता।'

'उसे तो मानना ही पड़ेगा ? नहीं तो कल से काम बन्द हो जायगा।'

'हूँ।' सेठजी बिसूरने लगे। फिर बोले—मेरे पास अपार सम्पत्ति है। मुझे और धन न चाहिए। उन्हीं ससुरों की जीविका के लिए मैं कारखाना खोले हुए हूँ, और वे ही बरे की तरह मुझे काटने पर लगे हैं। याद रखें वे सब ! मैं हमेशा के लिए कारखाने बन्द कर दूँगा।

'आपको अधिकार है। पर उस दशा में हम सब सरकार से कहेंगे कि वह कारखाने पर कब्जा करले और उसे चलावे।,

'हूँ।' सेठ रङ्गीलाल ने दूसरी तरफ मुँह फेर लिया। फिर बोला—'जो जी में आये करो। मैं तुमसे बात नहीं करना चाहता !'

'आप जिन्दा रहना चाहते हैं या नहीं ?'

'बस मैं, कहता हूँ, जाओ, जाओ, जाओ !' सेठजी बड़े जोर से गरजे।

सरयू, सेठजी के कमरे से बाहर निकल गया। थोड़ी देर में वह विमलचन्द के साथ फिर अन्दर आया।

'क्या है ?' सेठजी ने विमलचन्द को डाट कर कहा।

'ये लोग हड़ताल करने की धमकी देते हैं। मगर इनका प्वाइन्ट राइट है। हमको झुकना पड़ेगा। अच्छा हो, आप इनकी बात मान लें।'

'इनका क्या प्वाइन्ट है ?' सेठजी ने पुत्र से पूछा।

ये कहते हैं—'आप इन सबकी कमाई अपने व्यक्तिगत आमोद-प्रमोद में फूँक रहे हैं; और इसके परिणामस्वरुप इनके बाल-बच्चे भूखों मर रहे हैं। इनकी वेतन वृद्धि करें, अपना खर्च घटावें।'

'इनके बाप का धन है, जो मैं इनकी राय से खर्च करूँ ?'

'आप जैसे मेरे पिता हैं, वैसे ही इन के भी हैं। 'एक' का सिद्धान्त यही कहता है। आप, मैं, ये सब एक परिवार हैं।'

'नहीं ये 'एक' के अन्तर्गत नहीं हैं। 'एक' आध्यात्मिक धर्म है। इन्हें केवल भोजन, वस्त्र की चिन्ता है। ये पशु तुल्य हैं। 'एक' की फिलासफी ये नहीं समझ सकते।

'पिता जी, मैं आपसे सहमत नहीं हूँ।'

'कलियुग है न ! पिता की बात कैसे समझोगे ?'

विमलचन्द ने कहा— 'कलयुग का प्रभाव मेरे अकेले के ऊपर क्या पड़ेगा ? क्या आप पर नहीं पड़ सकता ?'

'बेटा ! तुम इनके चक्कर में मत पड़ो। जाओ, अपना काम करो।'

'पिता जी ! तब आपने मुझे ज्ञान क्यों प्राप्त करने दिया ? मेरी बुद्धि क्यों विकसित होने दी ? ज्ञान और बुद्धि की कसौटी पर मैं इनका पक्ष करता हूँ तो वह मुझे सही जान पड़ता है। ऐसी दशा में आपसे सत्य को छिपाऊँ तो अपराधी ठहरूँगा।

'तुम क्या चाहते हो ? कारखाना इनको सौंप दूँ ?'

'मेरी एक राय है।' जिस-जिसकी नौकरी १५ वर्ष से ऊपर हो, उसको एक-एक शेयर दे दें। इस प्रकार धीरे धीरे इन सबका कारखाने पर अधिकार हो जायगा।'

'अच्छी बात है। पहले मुझे मर जाने दो। उसके बाद तुम कारखानों के मालिक बनोगे, तब सबको शेयर देना।'

'और आपके जीवन काल तक अन्याय ही चलता रहे ?' सरयू बोला।

सेठ रंगीलाल ने तिरस्कार पूर्ण दृष्टि से सरयू की ओर देखा। उसका चेहरा उन्हें भयानक दिखा। उसके चले जाने के बाद वे सोचने लगे कि उसको यों नहीं जाने देना चाहिये था। बातों में उसको फँसा रखना चाहिये था। पता नहीं, क्या फसाद खड़ा कर दे ! मन ही मन वे प्रसन्न थे कि अच्छा हुआ वह लौट आया। उन्होंने अपने हृदय के अन्दर उसके प्रति उमड़ते हुए अपार तिरस्कार को दबा कर कृत्रिम स्नेह प्रदर्शित करते हुए कहा—'सरयूप्रसाद, तुम्हें मैं नौकर नहीं, अपने घर का एक व्यक्ति समझता हूँ। तुम्हें मैंने तरक्की करने का इतना मौका दिया। तुम्हारे इतने कसूर माफ किए; पर आखिर मैं भी तो आदमी हूँ। मैं ही कहां तक बर्दाश्त करूँ ! क्या तुम्हारा कोई फर्ज नहीं है ?'

'जी, सेठ जी ! है क्यों नहीं ?'

'तुम्हारे व्यवहार से तो कुछ ऐसा मालूम नहीं हुआ ?'

'वही तो कहने आया था। पर आप तो सुनते नहीं ?'

'कहो, जल्दी कहो।'

'यूनियन में एक प्रस्ताव पास हुआ है ?'

'फिर वही यूनियन ? अरे भाई अपनी बात कहो ?'

'अपनी ही बात है, सेठ जी ?'

सेठ रंगीलाल गद्दी के सहारे अच्छी तरह पीठ लगा कर बैठ गए—'अच्छा कहो ?'

'यूनियन में एक प्रस्ताव पास हुआ है कि सेठ जी से प्रार्थना की जाय कि वे इस वृद्धावस्था में अब और शादियां न करें और जनता के समाने गलत आदर्श उपस्थित न करें। उन्होंने प्रभातकिरन से शादी की थी। उसका यूनियन ने विरोध किया था। उस शादी को हुए एक वर्ष भी नहीं हुआ कि सेठ जी एक और शादी करने जा रहे हैं। यह अनुचित है। यूयियन का अनुरोध है कि वे अब और शादियों का विचार त्याग दें।'

'इसमें तुम्हारा अपना क्या है ?' सेठ जी ने पूछा।

'आप जानते हैं, प्रभातकिरन को मैं अपनी बहन मानता हूँ। उसक हित में भी मैं आपसे यह कहने आया हूँ कि आप यह शादी न करें ?'

'प्रभातकिरन को मैं तलाक दे चुका ?'

'पर उसने तो आपको तलाक नहीं दिया ?'

'उसने भी मुझे तलाक दे दिया है ?'

'तब वह भी अपना दूसरा ब्याह कर सकती है ?'

'नहीं, तय यह हुआ है कि मैं उसे ५०००) मासिक पेंशन दूँगा। परन्तु यदि वह दूसरा ब्याह करेगी तो मैं यह पेंशन बन्द कर दूँगा और मेरी जो विल उसके पास है, वह रद्द समझी जायगी !'

सरयू चुप हो रहा।

'और कुछ ?' सेठ रंगीलाल ने पूछा।

'फिर भी इस अवस्था में आप शादी करें, यह उचित नहीं है। इसमें हम सब अपराधी ठहरते हैं ?'

'सो कैसे ?'

'हमारे सबके परिश्रम से ही आपके पास यह धन जमा होता हैं। जिसका बल पाकर आप कुपथ पर पांव रखते हैं। अतएव...'

'बस' अब मैं आगे नहीं सुनना चाहता। मैं अपने धन को

व्यय करने के लिये स्वतन्त्र हूँ। तुम्हारी मजदूरी तुम्हें देता हूँ। उससे आगे तुम्हरा हक नहीं।'

'हमें कम मजदूरी मिलती है। हमारी पूरी मजदूरी दे दें और तब आप शादी कर सकते हैं।'

'पूरी मजदूरी क्या हुई ?'

'कम से कम १०० प्रतिशत की तुरन्त वृद्धि कर दें ?'

'हूँ ?'

थोड़ा सोच कर सेठजी बोले—'यह कुछ न होगा !'

'तो यह लीजिए, हमारा अल्टिमेटम ?'

सरयू ने सेठजी के हाथ में एक पर्चा रख दिया। उसमें लिखा था—'सेठ रंगीलाल मिल्स के मजदूरों की ओर से घोषित किया जाता है कि सेठजी मजदूरी की दर १०० प्रतिशत बढ़ा दें और तब उनके पास जो धन बचे, उसको चाहे जैसे व्यय करें। यदि वे मजदूरी नहीं बढ़ाते तो उस धन को संचित रखें, ताकि देश में जब कभी नई व्यवस्था कायम हो, तब उसका सदुपयोग हो सके। लोकहित में वे चाहें, जो व्यय करें। पर अपने निजी आमोद प्रमोद, शादी ब्याह में वे एक पैसा भी व्यय करने के हकदार नहीं हैं। यदि १५ दिन के भीतर सेठजी ने हमारी इस प्रार्थना को स्वीकार न कर लिया, तो दुःख के साथ हमें सब मिलों में काम बन्द कर देना पड़ेगा।'

'मैं सोच कर उत्तर दूँगा ?' सेठजी ने कहा।

'बहुत अच्छा सेठजी ?' सरयू चला गया।

'क्या कहते हो ?' सेठ जी ने विमलचन्द से पूछा।

'उनका पक्ष दृढ़ है।' विमलचन्द बोला।

'तुम्हारी क्या राय है ? मैं शादी करूँ या नहीं ?'

'मेरी राय शादी की नहीं है ?'

'अपनी माता से और दादी से पूछा है ?'

'उनकी भी राय नहीं है ?'

'श्री श्री त्रिकालदर्शी महाराज से पूछा है ?'

'नहीं।'

'उनसे भी पूछ लो। वे बुद्धि और ज्ञान में तुमसे बड़े हैं ?'

'उनके तर्क सुनूँगा !'

'अच्छा जाओ।'

विमलचन्द चला गया। सेठ रङ्गीलाल मुस्कराए। लड़का ही है अभी यह ! और ये ससुर मजदूर इसे बरगलाना चाहते हैं। उन्होंने एक सन्तोष की सांस ली कि श्री श्री त्रिकालदर्शी महराज पुत्र को समझा देंगे।

उनके उत्तेजित मानस में फिर लाजवन्ती हंस के समान तैरती हुई आई और क्रमशः शान्ति विराजने लगी। लाजवन्ती ! ऐसी नारी उन्होंने इस जीवन में नहीं देखी। वह अद्भुत है। वह उन्हें नवजीवन प्रदान करेगी। संसार उनके लिए फिर सरस और सुन्दर बनेगा। यह शादी वे जरूर करेंगे। विरोध होता है, वह क्षणिक होगा। पर हाँ, अब की बार इस सरयू से चौकन्ना रहना चाहिये। पता नहीं, क्या फसाद पैदा कर दे।

और फिर वे सोचने लगे। ये मजदूर-आदि प्रभु ने हम धनिकों के आराम के लिए बनाये हैं। विश्व में विचार, साहित्य, कला ज्ञान विज्ञान का जो इतना विस्तार हुआ है, इसका श्रेय धनिक वर्ग को ही है। उसके धन बल से ही यह सब सम्भव हो सका है। वह धन को एकत्र करके इनसे इस प्रकार काम न लेता तो आज संसार की इतनी उन्नति न होती। इनकी चलती तो ये सारे धन को खा पी डालते। फिर भी भूखे के भूखे रहते और परिणाम यह होता कि संसार की इतनी उन्नति न होती। पता नहीं, इनके दिमाग में यूनियन, मजदूर संघ आदि का विचार किसने भर दिया है।

वह जरूर शैतान होगा। वह विश्व का नाश करना चाहता है। हे ईश्वर, शैतान से संसार की रक्षा करो।

उन्होंने सोचा कि इन मजदूरों को श्री 'एक' जी का दर्शन कराना चाहिये। शायद वे इनको बुद्धि दें और वे अपने भाग्य में विश्वास करें। इनको राह पर लाने का एक ही उपाय है। इनके बीच में पूजन, भजन और श्री एकजी के दर्शन का प्रचार किया जाय और श्री श्री १०८ त्रिकालदर्शी महराज का प्रवचन इन्हें सुनने को मिले।

उन्होंने मिल में टेलीफोन करके सरयूप्रसाद को फिर बुलवाया। वह आया।

सेठजी बोले—'क्यों जी, तुम राम का नाम लेते हो ?'

'नहीं ?'

'क्यों ?'

'लाभ क्या है ?'

'राम का नाम लेने से कोई लाभ ही नहीं है ? तुमने श्री त्रिकालदर्शी महाराज को देखा है। वे राम का नाम लेते हैं। उन्हें तुम समझते हो, कोई लाभ नहीं है ?'

'उन्हें राम का नाम लेने के लिए आपसे वेतन मिलता है। मुझे क्या मिलेगा ?'

सेठजी ने सोचा कि सरयू के इस उत्तर में कुछ तथ्य है, मगर फिर वे बोले—'तुमको काफी शान्ति मिलेगी, यदि तुम कम से कम एक घण्टा रोज पूजा किया करो ?'

'दिल बहलाने के आजकल बहुत से साधन निकल आये हैं ?'

'क्या कहा, दिल बहलाना ?'

'हाँ, पूजा दिल बहलाना ही तो है। इससे तो अच्छा यह होगा कि घन्टा दो घन्टा रोज सिनेमा देखा जाय !'

'तुम्हारा कोई धर्म है या नहीं ?',

'हमारा एक धर्म है। अपने हाथ पांव के परिश्रम से अपने को रोटी मिले।'

सेठजी ने मन ही मन कहा—'इन पशुओं को समझाना व्यर्थ है। फिर वे बोले—'देखो, जिसके भाग्य में जो होता है, उसे वह मिलता है? गरीबी-अमीरी ईश्वर की देन है। तुम गरीब हो, इसलिए अमीर से घृणा मत करो। बल्कि ईश्वर से प्रार्थना करो कि वह तुम्हें भी अमीर बना दे।'

'हम यह नहीं चाहते?'

'फिर?'

'हम गरीब अमीर दोनों को मिला कर एक कर देना चाहते हैं। संसार सब का है। सबका इस पर समान अधिकार होना चाहिये। अमीरों के घर में जा धन भरा है उसमें हमारा भी हिस्सा है। हम यह मानते हैं।'

'हूँ।' सेठजी ने बहस व्यर्थ समझी। विषय को बदलते हुए उन्होंने कहा—तुम्हारी शादी हो गई है?'

'आपने रोक दी?'

'मैंने?'

'हां, आपने रोक दी! मेरी शादी प्रभातकिरन से होती, पर आपने अपने धन के बल से उसे मुझसे छीन लिया।'

'तुमने यह बात मुझसे पहले क्यों न कही? मैं तुम्हें इतना धन देता कि तुम उससे शादी कर सकते?'

सरयू कुछ न बोला। सेठजी उसके प्रति जैसे बहुत ही हमदर्द हो गये। बोले—'अपने मन के अनुरूप कोई लड़की ठीक करो। मैं धन तुम्हें दूँगा।'

'मैंने शादी का बिचार छोड़ दिया है।'

सेठजी गम्भीर हो गये। उन्हें जान पड़ा, जैसे सरयू किसी प्रकार उनके जाल में नहीं आ सकता। उससे संघर्ष करना ही पड़ेगा।

चौदहवां परिच्छेद

पंद्रह दिन बहुत जल्द बीत गये और सेठजी की समस्त मिलों में हड़ताल हो गई। इससे सेठजी क्रोधोन्मत्त हो गए और उन्होंने हड़ताल को असफल बनाने का निश्चय किया। सीधे वे गवर्नर के पास गए और पुलिस और फौज की मदद मांगी। गवर्नर ने उन्हें समझाया कि जब तक हड़ताली शान्त हैं, उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती। पर हां, पुलिस और फौज वक्त जरूरत के लिये तैयार रहेगी। इसको भी सेठजी ने अपना बड़ा बल समझा। उनका ख्याल था कि पुलिस और फौज को देखकर हड़ताली शांत हो जायँगे और चुपचाप काम में लग जायंगे। पर हुआ बिल्कुल उलटा। पुलिस और फौज को देखकर हड़तालियों में और जोश आगया और मिलों के अन्दर जाने वाले प्रत्येक द्वार पर पिकेटिंग करने के लिये स्वयं-सेवक तैनात हो गये।

सबसे जोर की हड़ताल रङ्गीलाल काटन मिल्स के द्वार पर थी। इस मिल में महीन और बढ़िया सूती वस्त्र तैयार होते थे और उस समय सेठजी के खास आर्डर से कुछ बहुमूल्य वस्त्र तैयार हो रहे थे। इस मिल की हड़ताल सेठजी को जरा भी सह्य न हो सकी और वे स्वयं उसको तुड़वाने चले।

उन्होंने देखा कि मिल के प्रधान द्वार के सामने मजदूरों का मेला लगा है और द्वार पर पिकेटिङ्ग हो रही है। कुछ मजदूर अन्दर जाने की चेष्टा कर रहे हैं पर अन्दर कोई नहीं जाने पाता।

सेठजी की मोटर द्वार पर जाकर खड़ी हो गई।

'रास्ता छोड़ो!' उन्होंने कहा।

'नहीं छोड़ेंगे!' स्वयंसेवकों ने कहा।

उनमें सरयू भी था। सेठजी ने उसे पहचाना। उसे देख

कर वे उबल पड़े। बोले—,रास्ता नहीं छोड़ोगे तो तुम्हारे ऊपर से मोटर चला देंगे।'

'शौक से चला दीजिए!' सरयू ने स्पष्ट स्वर में कहा। दर्शकों की उत्सुकता बढ़ गई।

'चलाओ जी मोटर!' सेठजी ने अपने ड्राइवर से कहा।

सरयू गेट पर मोटर के सामने लेट गया।

सरयू के बिल्कुल पास पहुँच कर ड्राइवर ने मोटरकार रोक दी।

'अबे, आगे बढ़ाता क्यों नहीं?'

'किसी आदमी के ऊपर से मोटर चलाना जुर्म है।'

'और किसी आदमी का सड़क पर रास्ता रोक कर लेटना जुर्म नहीं है?'

'वह भी जुर्म है।'

'पुलीस! पुलीस!!' मोटर की खिड़की से अपना कुरूप चेहरा बाहर निकाल कर उन्होंने जोर से आवाज लगाई।

एक पुलीस आफिसर उनकी ओर बढ़ा। दर्शकों की उत्सुकता भी बढ़ी।

पुलीस आफिसर के करीब पहुँचते ही सेठ जी ने उसे सम्बोधित करके कहा—'इस आदमी को गिरफ्तार करो! यह मुझे मेरी मिल के अन्दर नहीं जाने देता।

'इस सम्बन्ध में अपना लिखित बयान दीजिये!'

सेठ जी ने तुरन्त लिखकर उपर्युक्त वक्तव्य दे दिया।

अफसर वह बयान लेकर अपने ऊँचे अफसर के पास पहुँचा। वह मजदूरों का हमदर्द था। उसका इरादा मजदूरों को गिरफ्तार करने का कतई नहीं था। तुरन्त ही वह घटना स्थल पर पहुँचा।

उसने सेठ जी से कहा—'मान लीजिये, एक को हमने गिरफ्तार कर लिया। तब दूसरा लेट जयगा और फिर तीसरा। इस प्रकार यह क्रम जारी हो जायगा। अतएव मेरी प्रार्थना यह है कि

आप इस समय किसी को गिरफ्तार कराने का आग्रह न करें। आज का दिन यों ही जाने दें। कल कुछ उपाय सोचा जायगा।'

सेठ जी की समझ में यह दलील आ गई। उन्होंने ड्राइवर से कहा—'अच्छी बात है, मोटर पीछे घुमाओ।'

ड्राइवर ने इस आज्ञा का बड़ी प्रसन्नता के साथ पालन किया। मजदूर चिल्ला उठे—

'इनकलाब! जिन्दाबाद!!'

सेठजी को जान पड़ा, जैसे उनकी हार हो गई। क्रोध में उन्मत्त, पराजय की भावना से नत-मस्तक मोटर में सिमटे सिकुड़े वे चुपचाप बैठे रहे। फिर उनकी इच्छा बाहर सिर निकालने की न हुई।

'अच्छा, दुष्ट! कल पूरा बदला लूँगा।' उन्होंने मन ही मन कहा और अपने निवास स्थान पर वापस लौट गये।

श्री श्री त्रिकालदर्शी महाराज पहले से उपस्थित थे और सेठ जी की विजय के लिये कोई अनुष्ठान कर रहे थे। उनके श्वसुर, प्रभातकिरन के पिता डाक्टर रामभरोस भी उपस्थित थे और इस सङ्कट काल में दामाद के साथ हमदर्दी प्रकट करने आये थे।

सेठ जी ने उन दोनों की उपेक्षा की और सीधे अपने कमरे में चले गये। त्रिकालदर्शी महाराज ने शीघ्र ही अपनी पूजा समाप्त कर दी और वे भी वहीं पहुँचे। डाक्टर रामभरोस ने कहा—'आधे से अधिक मजदूर मेरे यहाँ दवा लेने आते हैं। मैं उनसे कहूँगा कि वे काम पर जायँ। हड़तालियों का साथ न दें।'

बहुत देर तक तीनों चुपचाप कमरे में बैठे रहे। सेठ जी के तन मन में आग सी लगी हुई थी। और उन दो खुशामदियों की चाटुकारी उनकी उस ज्वाला को शान्त करने के लिये काफी न थी। किसी तरह उन दोनों को उन्होंने बिदा किया और अपने आप वे हड़ताल भङ्ग करने के उपाय सोचने लगे।

उन्होंने विविध विभागों के प्रधान कर्मचारियों को, दफ्तर के

बाबुओं को और ऐसे मजदूरों को जो खुशामद या रिशवत से अपने पक्ष में लाये जा सकते थे, अपने निवास स्थान पर बुलवाया और उनसे कहा—'दो ही पक्ष हैं। एक मेरा दूसरा हड़तालियों का। आप लोग साफ साफ बतावें, किसके साथ हैं।'

'श्रीमान् आप के साथ ?'

'तो मैं आदेश देता हूँ कि कल आप सब लोग 'मिल' के अन्दर जबरदस्ती, जैसे भी हो, घुसें और काम शुरू करें। मैं इस बार किसी को माफ नहीं करूँगा। जो कल भी हड़ताल जारी रखेंगे उन्हें मैं कभी भी काम पर नहीं आने दूँगा। और जो कल हड़तालियों की परवाह न करके अन्दर पहुँच जायेंगे, उन्हें मैं अपना खैरख्वाह समझूँगा, और उनकी तरक्की का सदैव ख्याल रक्खूँगा।'

'जो आज्ञा श्रीमान्!'

सेठ जी ने उन्हें तुरन्त ही बिदा किया। उन्होंने कल्पना की कि हड़ताल विरोधियों का एक भारी जुलूस मिल के प्रधान द्वार से भीतर घुस रहा है और हड़ताली उन्हें रोक रहे हैं। और हड़ताली परास्त हो जाते हैं।

उन्होंने अपनी कोठी में ही भर्ती का एक नया दफ्तर खोल दिया और नये मजदूर भर्ती करने लगे, बड़ी बड़ी तनख्वाहों पर। दुबरी, घसीटा और भूरी उनके मुँह-लगे हो गये थे। उन्हें बुला कर उन्होंने खूब इनाम दिया और सरयू के खिलाफ उन्हें भड़काया। तीनों ने प्रतिज्ञा की कि सरयू उन्हें रोकेगा तो वे उसका सिर हो तोड़ डालेंगे।

यह सब सोच और कर चुकने पर सेठ जी का क्रोध कुछ शांत हुआ और वे मोटर में सवार होकर फिर एक बार मिल का चक्कर लगाने गये। शाम हो गई थी और द्वार पर सन्नाटा था। चौकीदार लोग फाटक पर ताला लगा कर अपनी कोठरियों में खा पी

रहे थे। सेठ जी ने उन्हें भी बुलवाकर कुछ हिदायतें दीं और वापस चले आये।

अपनी इस उपेक्षा से वे अत्यन्त क्षुब्ध हो उठे थे। वे इतने बड़े धन-सम्पन्न व्यक्ति और ये क्षुद्र मजदूर उनकी ऐसी अवज्ञा करें ! देखना है, ये कब तक काम पर नहीं आते। उन्हें क्या ? उनके पास अपार धन है। सब मिलों में ताले लग जाय तब भी उनका कुछ न बिगड़ेगा।

सेठ रङ्गीलाल का प्रयत्न कुछ रङ्ग लाया और दूसरे दिन मजदूरों में स्पष्ट दो दल दिखाई पड़ने लगे। विविध विभागों के कर्मचारी और दफ्तर के बाबू जबरदस्ती अन्दर जाने लगे। पिकेटिङ्ग करने वाले रास्ते में लेट गये, पर वे न माने। वे उनकी छाती पर पांव रख-रख कर जाने लगे।

इस घटना से मजदूरों में एकदम बड़ी उत्तेजना फैली और कुछ जाने वालों को धमकाने लगे। इन जाने वालों में घसीटा, दुबरी और भूरी भी थे। इन्हें सरयू ने आगे बढ़ कर रोका। पर आज ये दूसरे रङ्ग में थे। ये तीनों अपने हाथों में छोटे छोटे डण्डे लिये हुये थे। सरयू पर तीनों ने एक साथ प्रहार किया। भीड़ में उत्तेजना फैल गई। पर सरयू शान्त खड़ा रहा। उसके मस्तक से खून की धारा बह चली। पुलीस दौड़ी। उसने घसीटा, दुबरी व भूरी को गिरफ्तार कर लिया। तीनों जोश में आकर बड़बड़ाने लगे—'ये हमें अन्दर नहीं जाने देते थे ?'

'तो हमसे क्यों नहीं कहा ?' पुलीस के अफसर ने उन्हें डाट कर कहा—'हम इन्हें गिरफ्तार करते।'

सरयू शारीरिक कष्ट से तो पीड़ित था ही, मानसिक कष्ट भी उसे बहुत हुआ कि उसे उसी के प्यारे आदमियों ने मारा, वह गिर पड़ा। हड़ताली उसे तुरन्त अस्पताल में ले गये।

अब पिकेटिङ्ग और जोर से शुरू हुई। सेठ रङ्गीलाल को

जब यह पता चला कि उनके पक्ष के लोग गिरफ्तार हो रहे हैं। और हड़तालियों से पुलीस कुछ नहीं बोलती, तब फिर वे घटना-स्थल पर पहुँचे।

उन्हें देख कर मजदूरों ने 'इनकलाब जिन्दाबाद' के नारे बुलन्द किये। उन्होंने मोटर के बाहर सिर निकाल कर क्रुद्ध दृष्टि से उन सबकी ओर देखा। वे कुछ बोले नहीं। ड्राइवर से कहा—'परवाह मत करो! मोटर बढ़ाते चलो।'

ड्राइवर ने पों पों करके मोटर का हार्न बजाया। पर गेट पर खड़े वालंटियर टस से मस न हुये। कतार की कतार रास्ते में लेट गई। पुलीस का जत्था पहुँचा कि उन्हें गिरफ्तार करे।

गिरफ्तारियां होने लगीं। पुलीस की लारियां मजदूरों को गिरफ्तार करके ले जाने लगीं। और अधिकाधिक संख्या में मजदूर गिरफ्तार होने लगे।

सेठ रङ्गीलाल का पुत्र विमलचन्द भी अपनी नवदुलहिन के साथ घटनास्थल पर उपस्थित था। वह दूर एक छोटी सी कार में बैठा था और ड्राइवर के स्थान पर उसकी पत्नी रतनबाई थी। दोनों ने सरयू को घायल होकर गिरते देखा था। उसके प्रति दोनों के हृदयों में सहानुभूति उमड़ आई थी। दोनों ने दफ्तर के बाबुओं को मजदूरों के ऊपर से जाते देखा था। उनकी इस अभद्रता पर दोनों को क्षोभ हुआ था। और अब हजार-हजार मजदूरों को गिरफ्तार होते देख दोनों को कष्ट पहुँच रहा था।

विमलचन्द से अधिक न रहा गया। वह अपनी मोटर कार से उतरा। लड़खड़ाता हुआ आगे बढ़ा। उसके पहुँचते पहुँचते गेट पर खड़ा स्वयंसेवकों का जत्था गिरफ्तार हो गया था और उसका स्थान लेने दूसरा जत्था आ रहा था कि विमलचन्द दौड़ कर गेट पर खड़ा हो गया। आगन्तुकों से बोला—'ठहरो, पहले मुझे गिरफ्तार हो लेने दो।' उसका दम फूल रहा था, सिर एक

तरफ को लटका जा रहा था, दोनों हाथ नाव के दो डांडों की तरह उठ और गिर रहे थे कि जिस से शरीर का बैलेंस कायम रहे।

'इनकलाव! जिन्दाबाद' मजदूर चिल्ला उठे। पुलीस आफिसर की हिम्मत नहीं पड़ी कि वह विमलचन्द को गिरफ्तार करे।

सेठ रङ्गीलाल ने मोटर के बाहर सिर निकाल कर कहा—'विमल! तू यह क्या कर रहा है?'

'पिता जी! एक और अनेक मिल रहे हैं।'

'हूँ! ड्राइवर! चलाओ मोटर।'

'ड्राइवर! मोटर से उतरो।' अनेक का साथ दो; एक की आस छोड़ो।' विमलचन्द बोला।

ड्राइवर ने सेठ रङ्गीलाल की तरफ देखा। उसने कहा कुछ नहीं। पर उसकी मूक चितवन का एक ही अर्थ था—'आज्ञा दीजिये कि मोटर पीछे हटाऊँ। यह दृश्य असह्य है।'

एकाएक विमलचन्द ने घूम कर देखा कि रतनबाई उसकी बगल में आकर खड़ी हो गई है। उसको देखकर विमलचन्द मुस्कराया। कुछ कहने को उसने मुँह खोला और उसके पहले ही रतनबाई बोल उठी—'जहाँ आप वहाँ मैं। हम तुम दोनों एक हैं?'

'एक नहीं अनेक। आज से हम तुम दोनों अनेक के अन्तर्गत हैं। एक हैं केवल हमारे पिता जी—वह देखो, उधर मोटर में बैठे हैं।''

अपने विरोधियों में अपनी पुत्रबधू को भी पाकर सेठ रङ्गीलाल बहुत दुःखी हो उठे। इसे उन्होंने अपनी बहुत बड़ी हार समझी। ड्राइवर से कहा—'अच्छा मोटर वापस ले चलो।'

उनकी मोटर का इञ्जन भर्रा उठा। पों पों की आवाज हुई और सङ्कट के बादल छिन्न भिन्न से हो गये। गिरफ्तारी रुक गई। जो लोग अन्दर चले गये थे, वे पछताने लगे कि हाय उनसे भूल हो गई।

सेठ रङ्गीलाल घर पहुँच कर अपने कमरे में बन्द हो गये। उन्होंने निश्चय किया कि अब वे विमलचन्द को घर में न घुसने देंगे। जाये, अपनी ससुराल में जाकर रहे या जहाँ उसकी खुशी हो जाय। अपने जीते जी वे उसे अपने घर में न घुसने देंगे। नहीं अब वे उसका मुँह भी न देखेंगे। और पुत्र-वधू! उसी ने उनके पुत्र को बिगाड़ा है। उसको अपने वशीभूत रख कर वह स्वाधीनता का जीवन व्यतीत करना चाहती है। इसीलिये तो उसने यह जानते हुये भी कि वह रोगी है, उसके साथ शादी की है। हाय! उनका सर्वनाश हो गया। पर नहीं, वे नई शादी करेंगे। परमात्मा उन्हें दूसरा पुत्र देंगे। लाजवन्ती उनके घर में नवीन प्रकाश लेकर आ रही है। वे जरूर उससे शादी करेंगे। किसी तरह नहीं मानेंगे। किसी तरह नहीं। पर पहले विमलचन्द को घर से निकाल देंगे। उन्होंने रङ्गमहल के समस्त बाहरी द्वारों को बन्द करा दिया, उनमें ताले डलवा दिये, और चाबी का गुच्छा स्वयं लेकर अपने खास कमरे में जा बैठे। और विमलचन्द के आने की प्रतीक्षा करने लगे।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

आज पहला अवसर था, जब रङ्गमहल में सन्नाटा छाया हुआ था। नौकर-चाकर सभी खिन्न थे। पार्बतीबाइ की आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी। जब उसका पुत्र ही रङ्गमहल में न रहने पावेगा, तो वही रह कर क्या करेगी? वह अपने पंगु पुत्र का साथ न छोड़ेगी। जहाँ वह जायगा, वह भी उसके साथ जायगी। गंगाबाई को पुत्र के इस निश्चय का समाचार मिला तब वह बहुत दुःखी हुई। परन्तु वह अपने पुत्र से परिचित थी। वह जानती थी कि सेठ रङ्गीलाल जो निश्चय कर लेते हैं, उस पर अडिग रहते हैं। उसका वृद्ध शरीर इस योग्य नहीं था कि वह पौत्र के साथ दर-दर की खाक छाने। साथ ही उसका कोमल मन भी ऐसा नहीं था कि वह उसके वियोग को बर्दाश्त कर सके। अतएव रङ्गमहल के सभी व्यक्तियों को यह चिन्ता थी कि वृद्धा सेठानी को किस प्रकार सम्भाला जाय?

सेठ रङ्गीलाल में जहाँ अनेक अवगुण थे, वहाँ सब से बड़ा एक गुण भी था। वे अपनी माता का बहुत आदर करते थे। उसकी मर्जी के विरुद्ध उन्होंने कभी कोई कार्य न किया था। धर्म का भय दिखा कर वे उचित या अनुचित अपने प्रत्येक कार्य में माता की स्वीकृति ले लेते थे। परन्तु अब यह भी असम्भव था।

दो जबरदस्त काम वे करने जा रहे थे। अपने एक मात्र उत्तराधिकारी पुत्र विमलचन्द को निर्वासित करना और उसके बाद लाजवन्ती से ब्याह करना।

अब तक उनका कायदा यह था कि वे अपने कार्यों का जिक्र अपनी माता से करते थे। आज प्रथम बार वे इस निमय को भङ्ग करने जा रहे थे।

वृद्धा सेठानी इस प्रतीक्षा में बैठी रही कि रङ्गीलाल उसके पास आयेगा, तब वह उसे समझा देगी। पर रङ्गीलाल न आये। तब वह स्वयं उनके कमरे में गई।

'तुझे क्या हो गया है रे रङ्गी?' उसने स्नेह मिश्रित स्वर में अपने सहज स्वभाव से कहा।

'माँ! तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ। इस समय तुम वापस जाओ! मेरी बात मानो।' रङ्गीलाल ने कहा।

उसी समय बाहर फाटक पर मोटर की हार्न बज उठी। विमलचन्द अपनी नवविवाहिता पत्नी रतनबाई के साथ मोटर में बैठा था।

'फाटक खोलो।' वह चिल्ला भी रहा था और हार्न भी बजा रहा था।

मां को वहीं छोड़ कर सेठ रङ्गीलाल बाहर निकले। चौकीदार चाभियों का गुच्छा लिये खड़ा था कि आर्डर मिले और वह फाटक खोल दे। उसके मन के इस भाव को सेठ रङ्गीलाल ताड़ गये। उन्होंने कड़ी निगाह से उसे देख कर कहा—'खबरदार। जो फाटक खोला।'

बेचारा जहाँ का तहाँ खड़ा रह गया। सेठ रङ्गीलाल स्वयं आगे बढ़े।

परिस्थिति का कुछ आभास विमलचन्द को भी हुआ। अतएव उसने हार्न बजाना बन्द कर दिया और पिता को अपनी ओर आता हुआ देखकर मोटर से उतर पड़ा और एक ओर खड़ा हो गया। रतनबाई मोटर में चुपचाप बैठी रही।

सेठ रङ्गीलाल ने करीब आकर सरोष स्वर में कहा—'क्या चाहते हो।'

विमलचन्द को जान पड़ा, जैसे वह पिता का मार्ग रोकने को मिल के द्वार खड़ा हुआ था, वैसे ही वे उसका मार्ग रोके खड़े हैं।

वह बोला—'फाटक खोल दें! आप की इच्छा नहीं होगी तो अन्दर नहीं आऊँगा।'

'आज की तारीख से तुम्हारे लिये रङ्गमहल के फाटक सदैव के लिये बन्द हैं, जाओ।'

'रङ्गमहल में मेरा कोई हक नहीं है?'

'नहीं, इसे मैंने अपने स्व-अर्जित धन से बनवाया है।'

'अच्छी बात है?'

वह मोटर पर बैठ गया। अपनी पत्नी से बोला—'चलो, वापस चलो।'

रतनबाई ने इञ्जन स्टार्ट किया।

सेठ रङ्गीलाल बोले—'यह कार मेरी है। इसे तुम नहीं ले जा सकते?'

विमलचन्द उतर पड़ा। बोला—'पिता जी, आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।'

रतनबाई भी उतर पड़ी। अपने पति को वह अकेला नहीं छोड़ सकती थी।

पार्वतीबाई दौड़ती हुई आईं। पति से बोलीं—'फाटक खोल दो!'

'बाहर जाना चाहती हो?'

'हां।'

'याद रखो, फिर कभी अन्दर नहीं आ सकोगी?'

'नहीं आऊँगी।'

सेठ जी ने फाटक खोल दिया। माता दौड़ कर अपने पुत्र से लिपट गई—'बेटा, चलो! मैं तुम्हारे साथ चलूँगी।'

'मां, जब राम वन जाने लगे थे, तब कौशल्या घर में ही रही थीं। तुम रहो।'

बेटा, कौशल्या को आशा थी कि राम लौट कर आवेंगे! इससे

वे जीवित रहीं। और तू तो सदैव के लिये घर छोड़ रहा है। मैं तुझे कैसे छोड़ूँगी ?'

'मां, मेरे साथ गरीबी का जीवन बिताना होगा। मजदूरी करनी होगी।'

'सब करूँगी।'

'आओ ?'

और सेठानी के पीछे रङ्गमहल से निकलने वालों का तांता बँध गया। नौकर-नौकरानियाँ सभी निकले जा रहे थे। सेठ रङ्गीलाल ने फाटक खोल दिया था—'जाओ ! सब जाओ !'

गिरती पड़ती गंगाबाई भी घटनास्थल पर आई। बोलीं—'रङ्गी, तुझे क्या हो गया है ?'

रङ्गीलाल ने फिर अपना वही वाक्य दुहराया—

'मां, तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ। इस समय तुम वापस जाओ। मेरी बात मानो।'

'नहीं, मैं वापस नहीं जाऊँगी। मुझसे तेरे इस महल में अकेले नहीं रहा जायगा। मैं भी जाऊँगी।'

सेठ रङ्गीलाल ने माता के लिये भी मार्ग खाली कर दिया। कहा—'जाओ। तुम भी जाओ।'

वृद्धा सेठानी लुढ़कती पुढ़कती बाहर निकली। उसे सहारा देने विमलचन्द दौड़ा।

पहले तो जान पड़ा कि वृद्धा के पास पहुँचते-पहुँचते वह स्वयं लुढ़क पड़ेगा। पर उस समय अभूतपूर्व घटनायें घटित हो रही थीं। सभी लोगों ने देखा कि विमलचन्द के डगों में स्थिरता है और वह स्वस्थ मानव की तरह चल रहा है। रंगमहल के निवासियों के लिये वह अभूतपूर्व दृश्य था। सम्भवतः विमलचन्द की इच्छा शक्ति का उसके शरीर पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा था कि उसका लकवा जाता रहा था। उसके तन, मन, में अभूतपूर्व शक्ति

आ गई थी। उसने वृद्धा सेठानी को अपनी दोनों बाहों में आबद्ध करके उन्हें अपने कन्धों पर बैठाल लिया था और इस प्रकार चल रहा था जैसे कोई पहलवान हो। रतनबाई कुछ पीछे थी। उसने पति की ओर निगाह की, तो आश्चर्य चकित रह गई। उसके शरीर में क्षण मात्र में यह कैसा परिवर्तन हो गया था। उसे अपने आप पर विश्वास न हुआ। वह सोचने लगी कि कहीं वह सपना तो नहीं देख रही है। सपना ही सही, यह कितने आनन्द की बात थी कि आज उसका पति पूर्ण स्वस्थ मानव की भाँति कदम बढ़ा रहा था। उसने मन ही मन कहा—'हे भगवान्। यदि यह सपना हो तो सदैव के लिये बना रहे।'

वह दौड़ कर अपने पति के बराबर पर पहुँची।

'प्यारे ! देखा, तुम्हारा लकवा अच्छा हो गया है ?'

'सच ?' विमलचन्द ने उसकी ओर आश्चर्य भरी दृष्टि से देखा।

उसे बोलने में अत्यन्त आसानी हुई। उसने अपनी माता पार्वतीबाई की ओर निहारा। सिर नीचा किये आँखों से आँसू बहाती वह चुपचाप चली आ रही थी।

'माँ, अफ़सोस क्यों करती हो ? इधर देखो, मेरा लकवा अच्छा हो गया है।'

पार्वतीबाई ने पुत्र की ओर देखा। वास्तव में वह पूर्ण स्वस्थ हो उठा था। क्षण भर को उसे भूल गया कि वह कहां है। दौड़ कर वह पुत्र से लिपट गई ! उसे टटोला, चुमकारा, फिर आकाश की ओर देख कर कहा—'प्रभो, तुम्हारी लीला अपरम्पार है।

पुत्र को स्वस्थ देख कर जहाँ उसे प्रसन्नता हुई वहीं दुःख भी हुआ कि हाय ! ऐसा सुयोग्य पुत्र रत्न पाकर भी सेठ ने उसे ठुकरा दिया। वह सोचने लगी—शायद जिस ईश्वर ने यह दिन दिखाया

है वही सेठ जी की मति भी फेर दे और वे हम सबको वापस बुला लें।

धूप तेज थी। बम्बई की सड़कों पर यह विचित्र जलूस चलते चलते थक भी गया था। नगर के कोलाहल से दूर वे एक शून्य स्थान में पहुँचे। एक पेड़ की सघन छाया में रुक गये और सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिये।

पेड़ की एक उभड़ी हुई जड़ पर वृद्धा सेठानी को बैठाल कर विमलचन्द उछलने कूदने लगा। सब उसको घेर कर खड़े हो गये जैसे देहातों में खड़े होकर लोग बन्दर का नाच देखते हैं।

जब अच्छी तरह उछल कूद चुका तब उसने रतनबाई को सम्बोधित करके कहा—'तुम्हें याद है न? मैंने विवाह के समय कहा था कि मेरा लकवा अच्छा हो जायगा। आज वह शुभ घड़ी आ गई। आज ही मुझे इसकी जरूरत थी। अभी तक मैं अपने पिता के धन के सहारे जीवित था। अब अपने बाहुबल के सहारे जीवित रहूँगा।'

रतनबाई उस समय गङ्गाबाई के चरणों के निकट बैठी उसके चरण दाब रही थी। गंगाबाई ने कहा—'यह सती है। सती के तेज से सब सम्भव हो सकता है। विमल! तू इसी के तेज से अच्छा हुआ है? इसी के सौभाग्य से!'

'क्या कहती हैं? बड़ी अम्मा!' रतनबाई बोली—'मेरा सौभाग्य होता तो आज ये पथ के भिखारी होते?'

'पथ के भिखारी?' विमलचन्द बोला—'क्या कहती हो। आज मैं संसार में सबसे बढ़ कर धनी आदमी हूँ। स्वास्थ्य सबसे बड़ा धन है प्रियतमे।'

वह फिर उठ कर नाचने लगा। रतनबाई अपने बहुमूल्य आभूषण उतार उतार कर फेंकने लगी कि कोई भी उन्हें ले ले। इन आभूषणों की उसे अब जरूरत नहीं थीं। वह अपने पति के साथ

गरीबी का, परिश्रम का जीवन बिताने जा रही थी। धन से वह ऊबी हुई थी। आज धन के उन बन्धनों को वह तोड़-तोड़ कर फेंक रही थी।

सहसा उन्हें उस ओर मोटरों का एक काफिला आता नजर आया। सबसे आगे की मोटर पर सेठ रतनचन्द थे। मोटर के रुकते ही वे बोले—'बेटी, क्या तूने समझा था कि तेरा पिता भी तुझे आश्रय नहीं देगा। तुझे सिर्फ खबर भेजने की जरूरत थी।

रतनबाई दौड़ कर अपने पिता से लिपट गई और, बोली पिता जी—'उधर देखिये, उनका लकवा अच्छा हो गया है?'

'सच।' वे दौड़ कर विमलचन्द के पास पहुँचे।

'चलिये मोटर में बैठिये। रंगमहल का द्वार आपके लिये बन्द है तो क्या हुआ? रतननिवास भी तो बम्बई में है।

'आपका धन्यवाद है। पर अब मैं अपने हाथ पांव से कुछ काम करके ही खाऊँगा।'

'जरूर! जरूर!! पर कुछ दिन के लिये हमारा आतिथ्य तो स्वीकार करें।'

उन्होंने विमलचन्द को अपनी मोटर पर घसीट कर बैठाया। शीघ्र ही वहां कतार की कतार मोटरें आकर खड़ी हो गई। दूसरी मोटर पर गंगाबाई और पार्वती बाई बैठाई गई।

बाकियों पर और लोग क्रमशः बैठे।

मार्ग में विमलचन्द ने पूछा—'आपको कैसे मालूम हुआ कि हम लोग यहाँ हैं?'

मैंने सेठ रंगीलाल से टेलीफोन पर पूछा था—हड़ताल का क्या हाल है। तब उन्होंने बताया कि आपने भी हड़तालियों को 'ज्वाइन' कर लिया है और फलस्वरूप उन्होंने आपको घर से निकाल दिया है और बाकी सब आपके साथ निकल पड़े हैं। यह सोच

कर कि आप शायद मजदूरों के मुहल्ले की तरफ जायें, मैं इधर ही आया ?'

विमलचन्द पीछे की ओर देखने लगा कि सब लोग आ रहे हैं या नहीं। सेठ रतनचन्द ने भी पीछे मुड़ कर देखा। वे बोले—'और आपकी नई माता जी कहाँ हैं ?'

'नई कौन ?'

'श्रीमती प्रभातकिरन ?'

'वे अपने पिता के घर रहती है। रंगमहल में होतीं तो जरूर हमारे साथ आतीं। वे भी दुःखी हैं ?'

'और यह लाजवन्ती कौन है ?'

'इन्हीं के साथ पिता जी शादी करने जा रहे हैं।'

'किसी तरह मान नहीं सकते ?'

'अब क्या मानेंगे ? हम सबको छोड़ना उन्होंने स्वीकार किया। पर उन्हें नहीं। उनकी जिद ही तो है ?'

'सुना है, उन्होंने प्रभातकिरन को कोई विल लिखकर दी है ?'

'हाँ ! पर उससे क्या ?'

'वह विल लाजवन्ती देखे तो शायद शादी न करे ?'

'माता जी से मैं कहूँगा ?'

'यह लीजिये रतन-निवास आ गया। बरसों से खाली पड़ा था। आज अच्छी तरह आबाद होगा ?'

एक एक करके मोटरें रतननिवास के सामने आकर रुकीं और सब लोग उसके अन्दर गये।

सोलहवां परिच्छेद

बम्बई जैसे शहर में धन न हो तो कुछ नहीं हो सकता और धन तो हो सब सम्भव हो सकता है। सेठ रङ्गीलाल के पास अपार धन था। अतएव उनका दिमाग आसमान पर था। वे समझते थे, उनके पुत्र, पुत्रवधू, पत्नी, माता सभी उनके धन के गुलाम हैं। अपने धन के जोर से वे सबको चाहे जैसा नचा सकते हैं।

अतएव जब उनके घर के ये प्राणी घर से निकल पड़े, तब उन्होंने कोई परवा नहीं की। उन्होंने मन ही मन कहा—'वे जा कहाँ सकते हैं ? फिर लौट कर आवेंगे। इस बीच में लाजवन्ती से विवाह क्यों न कर लें।'

तुरन्त ही टेलीफोन करके उन्होंने श्री श्री त्रिकालदर्शी महाराज को बुलवाया और रङ्गमहल के लिये कर्मचारियों की भर्ती शुरू कर दी। उम्मीदवारों को उन्होंने मुँह माँगे वेतन दिये और रङ्गमहल में तत्काल ही चहल पहल छा गई। घसीटा, झूरी और दुबरी प्रधान पदों पर नियुक्त हुये। सारे रङ्गमहल का चार्ज उनके हाथ में आ गया था। सरयू को मारने का उन्हें अच्छा पुरस्कार मिला।

त्रिकालदर्शी महाराज ने मुहुर्त निश्चित किया और सेठ जी के नये विवाह की तैयारियाँ होने लगीं।

प्रभातकिरन को अपने पिता डाक्टर रामभरोस से मालूम हुआ था कि सेठजी की मिल में हड़ताल हो गई है। और सरयू बुरी तरह पीटा गया है। इस समाचार से उसे अत्यन्त दुःख हुआ, अतएव वह इस सम्बन्ध में विशेष जानकारी प्राप्त करने के लिये रङ्गमहल की ओर रवाना हुई।

फाटक पर पहुँच कर जब उसने नये-नये कर्मचारी देखे, तब उसका माथा कुछ ठनका। घसीटा, भूरी और दुबरी तीनों फाटक के पास बैठे 'गम्मत' कर रहे थे। 'गम्मत' बम्बई का खास शब्द है। इसका अर्थ सुरापान के साथ दिल बहलाव है।

प्रभातकिरन को देखते ही तीनों ने उठ कर उसका अभिवादन किया। भूरी और दुबरी पर काफी नशा सवार हो चुका था। घसीटा पर कुछ कम था। उसे सम्बोधित करके प्रभातकिरन ने पूछा—

'सरयू का कुछ पता है, कहाँ है ?'

'हाँ, हाँ, अस्पताल में पड़ा कराह रहा है।'

'क्या बात हुई ?'

'उसे हमने मार गिराया। इन दोनों ने भी मारा था, पर गिरा वह मेरी चोट से।'

'क्यों मारा ?'

'मारते न तो क्या उसे पूजते ?'

प्रभातकिरन ने घसीटा को ताज्जुब से देखा। सरयू उसकी कितनी मदद करता था, उसने सोचा। पर वह कुछ बोली नहीं। सिर्फ इतना कहा—'तुम्हारे वे कितने अच्छे दोस्त थे !'

'पर वे सेठ तो नहीं हैं ? और हमारी दोस्ती अब सेठ जी से है। सेठ जी ने सबको यहाँ से निकाल दिया है।'

'गङ्गाबाई, पार्वतीबाई, रतनबाई कोई नहीं ?'

'कोई नहीं ?'

'कहाँ गये सब ?'

'हम क्या उनके नौकर हैं, जो बतायें। हम तो सेठ साहब के साथ हैं।'

'और उनके नौकर कहाँ गये ?'

'वे भी उन्हीं के साथ गये ?'

'तुम में से कोई एक मेरे साथ चलो, सरयू के पास ?'

'न बाबा, कहीं वह फिर गिरफ्तार न करावें ? सेठ जी ने इतना रुपया देकर हमें छुड़ाया है।' घसीटा ने अपने हाथ से इशारा किया।

'नहीं गिरफ्तार नहीं करायेगा, चलो ?'

बड़ी मुश्किल से घसीटा को राजी करके प्रभातकिरन ने कार पर बैठाया और सेठ जी से बिना मिले ही वह लौट पड़ी। रास्ते भर वह यही कहती—'सेठ जी ने सरयू के साथ अन्याय किया है ?'

घसीटा ड्राइवर को मार्ग बताता हुआ सिविल अस्पताल में ले गया, जहाँ सरयू पड़ा था। उसके सिर में सख्त चोट आई थी।

वह बदमाश स्त्री, जिसने प्रभातकिरन को किसी समय में बहुत कुछ परेशान किया था, उसके सिरहाने बैठी थी। पर आज उसने प्रभातकिरन को नहीं पहचाना।

प्रभातकिरन को देख कर सरयू मुस्कराया, पर उससे बोला न गया। उसके सिर में सख्त चोट लगी थी।

अस्पताल के अधिकारियों से बातें करके प्रभातकिरन ने सरयू की विशेष चिकित्सा का प्रबन्ध कराया और क्वार्टर लेकर स्वयं भी अस्पताल में रहने लगी। दोनों स्त्रियों ने मिल कर सरयू की सेवा की और वह अच्छा हुआ।

प्रभातकिरन ने देखा कि वह स्त्री चरित्रहीन होते हुये भी घसीटा और दुबरी के मुकाबले में उच्च चरित्रवाली थी। उसने उसकी बड़ी प्रशंसा की और उसे अपना परिचय दिया।

अपनी प्रशंसा से वह गदगद् हो गई और बोली—'स्त्री चाहे पुरुष के लिये अपना सर्वस्व अर्पण कर दें। पर पुरुष उसकी कोई परवाह नहीं करता ?'

फिर उसने अपनी कहानी सुनाई। किस प्रकार वह मुसीबतों की मारी बम्बई में आई और उसे यह जीवन व्यतीत करना पड़ा।

पर उसे प्रसन्नता है कि आज वह भी कुछ काम की सिद्ध हुई। वह स्त्री मजदूरनियों की नेत्री है और उसकी प्रतिष्ठा बढ़ रही है।

फिर उसने प्रभातकिरन से कहा--'मुझे किसी से ईर्ष्या नहीं। तुमसे भी नहीं। मैंने वह जीवन छोड़ दिया है। मैं......।'

उसके गाल पर सरयू ने एक हलकी चपत लगाई। बोला—'तुम जो हो, वही बनी रहो।'

वह शरमा गई। सरयू उसे प्यार करता था, भाई की तरह, पिता की तरह। पहले हंसी मजाक भी करता था, पर अब वह सब कम हो गया था। एक समय में उसके मन में इच्छा थी कि वह सरयू से शादी करके उसकी होकर रहे, पर वह सम्भव नहीं हो सका और अब उसने एक और प्रेमी खोज लिया है। उसको शादी होने जा रही थी कि सरयू घायल हो गया और उसकी शादी में बाधक सिद्ध हुआ। उसने इसकी शिकायत की। खैर उसने बदला ले लिया।

सरयू ने प्रभातकिरन की ओर देखा। बोला--'देखा, यह समझती है कि इसने हमारे तुम्हारे विवाह में बाधा उपस्थित की। यह नहीं जानती कि क्या शक्तियाँ हमारे तुम्हारे बीच में विघ्न बन कर आई थीं और अब अमर हैं। हाँ अमर हैं।'

प्रभातकिरन उदास हो गई। वे दिन लौट कर नहीं आ सकते। धन ही सब कुछ नहीं है, उसने सोचा। पर अब वे दिन लौट कर नहीं आ सकते, नहीं आ सकते। वह धन का परित्याग कर दे, तो भी नहीं। वह बोली—'भैया सरयू? विधि का लिखा कौन मेट सकता है? पर मैं क्या तुम्हारे साथ तुम्हारी बहन की तरह नहीं रह सकती। तुम शादी कर लो। तुम्हारे बाल-बच्चों की सेवा करूँगी।

'क्या इसका उल्टा नहीं हो सकता?'

'यानी?'

'यानी तुम शादी कर ही चुकी हो, मैं तुम्हारे बालबच्चों की सेवा करूँगा। मुझे आश्रय दोगी न? अब तो तुम बम्बई की सेठानी हो।'

'सेठानी! तुम्हें नहीं मालूम कि मैंने सेठ जी को तलाक दे दिया है?'

'तलाक? हिन्दू धर्म में तलाक कहाँ है?'

'हिन्दू धर्म के अनुसार हमारा विवाह ही कहाँ हुआ था?'

'अच्छा तो तलाक सही। पर एक पति को स्त्री इसलिये तलाक देती है कि वह दूसरा पति करे।'

'हो सकता है। पर मैं अब जैसी हूँ, वैसी ही रहना चाहती हूँ।'

'क्योंकि १०००) मासिक मिलते रहेंगे।'

'हाँ, मुझे अन्धी माता, छोटे भाई और वृद्ध पिता के लिये यह स्थिति स्वीकार करनी ही पड़ेगी।'

'तब यह कहो कि कोई तुम्हें २०००) दे तो सेठ जी को छोड़ कर उसकी हो सकती हो? और अगर कोई ३०००) दे तो उस दो हजार वाले को भी छोड़ सकती हो। ठीक है न?'

प्रभातकिरन असमञ्जस में पड़ गई। उसे अपने आप पर शर्म मालूम हुई। बोली—'ठीक कहते हो भाई, मैं पतन के मार्ग पर हूँ?'

'तब छोड़ो उस मार्ग को?'

'कैसे?'

'१०००) की पेंशन पर लात मारो। नया विवाह करो।'

'विवाह न करूँ तो?'

'तो और क्या करोगी? हिन्दुस्तान में स्त्री के दो ही पेशे हैं। या विवाह करें या...।'

सरयू चुप हो गया। प्रभातकिरन बोली—'कहे जाओ न! या मेरी तरह पतित जीवन व्यतीत करे।' क्षण भर को दोनों चुप रहे। प्रभातकिरन फिर बोली—

'हाय मुझ से कैसी बड़ी भूल हो गई है। पर इसका कोई प्रायश्चित हो सकता है ?'

'क्यों नहीं ?'

'क्या ?'

'मां, बाप व भाई को जहर दे दो ?'

'यह प्रायश्चित होगा ?'

'प्रायश्चित इसी की नींव पर होगा। उन्हें तुम कष्ट में नहीं देख सकोगी, अतएव तुम फिर फिर पाप की ओर जा सकती हो। अतएव उन्हें.....'

'क्या कहते हो। सरयू भैय्या ?'

'कितने ही लोग जो अपने प्रियजनों को कष्ट में नहीं देख सकते, उन्हें मार डालते हैं।'

'वह क्या पाप नहीं है ?'

'है ! पर उस पाप से छोटा है जो तुमने किया है और कर रही हो ?'

'हूँ !' प्रभातकिरन ध्यान मग्न हो गई।

अन्त में उसने निश्चय किया, कि वह सेठ जी से कतई सम्बन्ध न रक्खेगी। उनकी पत्नी तो वह बन सकती है, पर रखेली नहीं। वह उत्तेजित हो उठी। जो जल्दबाजी उसमें प्रारम्भ में थी; वही जैसे फिर उस पर सवार हो गई। उसी दम वह सेठ जी से मिलने चल पड़ी। आज वह अन्तिम फैसला करेगी। सेठ जी जब दूसरा विवाह कर सकते हैं, तब वह भी करेगी, ताकि उन्हें शिक्षा मिले।

तत्काल उसने मोटर तैयार कराई और रङ्गमहल के द्वार पर पहुँची।

वहां शहनाई बज रही थी। विस्तृत अहाते में लाउडस्पीकर लगे थे और शहनाई की आवाज चारों तरफ गूँज रही थी।

सेठ जी का विवाह हो रहा था। मालूम हुआ कि सेठ जी विवाह मंडप में बैठे हैं और लाजवन्ती से विवाह करने जा रहे हैं।

वह अन्दर गई। सेठ जी उसे देखते ही संकुचित हो गये, पर कुछ बोले नहीं।

प्रभातकिरन गुस्से में कांप उठी। वेदी के पास पहुँच कर उसने पण्डितों से कहा—'आचार्यगण ! जब मैंने इनसे शादी की थी, तब इन्होंने वचन दिया था कि ये और शादी नहीं करेंगे ! अतएव आप इनकी शादी बन्द कराएँ।'

सेठ जी बोले—'तुमने भी कुछ वादे किये थे, वे पूरे नहीं हुये। कौन नहीं जानता कि तुम सरयू से अब तक सम्बन्ध बनाये हो।'

'वह मेरा भाई है।'

'जानता हूँ, कैसा भाई है। घसीटा सब देख आया था !'

प्रभातकिरन के तन में आग लग गई। बोली—'जब तक आप अपनी बात को प्रमाणित न कर दें, तब तक के लिये शादी रोकें।'

'शादी नहीं रुकेगी।'

तब प्रभातकिरन लाजवन्ती से बोली—'बहन तुम एम० ए० पास हो। मां बाप ने तुम्हें यह शिक्षा क्या इसलिये दी थी कि तुम समाज में भ्रष्ट आदर्श रखो।'

भ्रष्ट आदर्श !' लाजवन्ती ने दांत पीस कर कहा—'भ्रष्ट आदर्श ? तुमने धन की लालच से शादी की थी और मैं, मैं शुद्ध प्रेम से प्रेरित हूँ ?'

'तुम्हारे मन में धन की जरा भी इच्छा नहीं ?'

'नहीं !'

'तो सेठ जी के पास सिवाय धन के और क्या है ?'

'वह तुम्हें नहीं दिखाई पड़ा तो क्या समझती हो, मैं भी अंधी हूँ। वे.........।'

'कृष्ण के अवतार हैं ?'

'हाँ !'

'तो तुम उनसे तब भी शादी करोगी यदि तुम उन्हें सर्वथा धनविहीन पाओ ?'

'जरूर !'

'अच्छा, तो अच्छी तरह समझ लो। उनकी मृत्यु के बाद तुमको एक कानी कौड़ी भी न मिलेगी।'

लाजवन्ती ने व्यङ्ग से प्रभातकिरन की ओर देखा। उसकी चितवन में उपेक्षा थी।

'क्या व्यर्थ बकती हो ?' उसने कहा।

'यह देखो। यह सेठ जी के 'विल' की नकल है। इनकी मृत्यु के बाद इनकी समस्त सम्पत्ति की स्वामिनी मैं होऊँगी। यदि ये इसी घड़ी मर जायँ तो तुमको तुरन्त ही रङ्गमहल खाली करना पड़ेगा।'

लाजवन्ती का चेहरा सफेद हो गया। उसने विल की ओर देखा ?

सेठ जी न कहा—'इस चुड़ैल ने चकमा देकर मुझसे ऐसी विल लिखवा लिया था। मैं उसे अस्वीकार करता हूँ। मैं दूसरी विल लिखूँगा।'

'अस्वीकार नहीं कर सकते। यह देखो।'

सेठ जी के मुँह से बोल न निकले और लाजवन्ती प्रभातकिरन की ओर देखती ही रह गई।

'अब तुम शौक से शादी करो।' प्रभातकिरन ने कहा और चल पड़ी।

रंगमहल के बाहर उसे रतनचन्द के आदमी मिले। वे उसकी तलास में आए थे। सेठ रतनचन्द उससे जो काम लेना चाहते थे, यह उसने पहले ही कर दिया था। ++++++—

समाप्त